समता कथा माला पुष्पांक-9

वह खांडे की धार चली

आचार्य श्री नानेश

#k'kd
श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ
lerk Hkou] chdkusj jkt-

❖ **समता कथा माला पुष्पांक-*9***

❖ **वह खाण्डे की धार चली**

❖ **आचार्य श्री नानेश**

❖ **प्रथम संस्करणः सितम्बर, *2010, 3100* प्रतियाँ**
द्वितीय संस्करणः अप्रेल, *2012, 1100* प्रतियाँ

❖ **मूल्य : *10/-***

❖ **अर्थ-सहयोगी :**
श्रीमान् राजकरणजी, दीपककुमारजी बरड़िया,
अहमदाबाद/सरदारशहर

❖ प्रकाशक :
श्री अ. भा. साधुमार्गी जैन संघ
समता भवन, आचार्य श्री नानेश मार्ग
श्री जैन पी.जी. कॉलेज के सामने, नोखा रोड़,
बीकानेर-334401(राज.)
फोनः *0151-2270261, 3292177, 0151-2270359 (Fax)*
visit us : www.shriabsjainsangh.com
e-mail : absjsbkn@yahoo.co.in

❖ आवरण सज्जा व मुद्रक :
तिलोक प्रिंटिंग प्रेस, बीकानेर
दूरभाष : *9314962475*

प्रकाशकीय

महिमा मण्डित स्व. आचार्य-प्रवर श्री नानालालजी म.सा. के रतलाम चातुर्मास में सन् 1988 में उन्हीं के तत्वावधान में जैन सिद्धांत विश्वकोष का लेखन कार्य प्रारम्भ हुआ। उसी के कथा खण्ड में अनेक कथाओं का भी संयोजन हुआ है। कुछ तकनीकी स्थितियों से उक्त कोष का प्रकाशन कार्य अब तक सम्भव नहीं हो पाया। कथा से आबाल वृद्ध को सात्विक प्रेरणा प्राप्त होती है। हर वर्ग उसे रूचि से पढ़ता है। इसलिए कोष में संयोजित कथाओं के प्रकाशन का निर्णय लिया गया। इस लेखन-सम्पादन में श्री शांतिलालजी मेहता, कुम्भागढ़ (चित्तौड़गढ़) के अथक परिश्रम को भी नहीं भुलाया जा सकता।

उपरोक्त पुस्तक समता कथा माला पुष्पांक-9 **वह खांडे की धार चली** के रूप में आप सभी के समक्ष प्रस्तुत है। जिसका द्वितीय संस्करण प्रकाशित कर रहे है।

इस पुस्तक के प्रथम व द्वितीय दोनों संस्करणों में अर्थ सहयोगी के रूप में श्रीमान राजकरणजी, दीपक कुमार जी बरड़िया अहमदाबाद /सरदारशहर ने जो सहयोग प्रदान किया है। उसके लिये संघ आपका आभारी है।

राजमल चौरड़िया
संयोजक - साहित्य प्रकाशन समिति
श्री अ.भा. साधुमार्गी जैन संघ, बीकानेर

अर्थ सहयोगी परिचय

जिनके चेहरे पर सदैव सौम्यता एवं प्रसन्नता झलकती रहती है जो सदैव अपने व्यवहार से दूसरों को सुवासित एवं प्रभावित करते रहते है उन्हीं विशिष्ट व्यक्तित्वों में से एक विशिष्ट व्यक्तित्व है आदर्श सुश्रावक, उदारमना श्री राजकरणजी बरड़िया। आपका जन्म दिनांक 1 जुलाई, 1953 को थली प्रदेश सरदारशहर (चुरू) में समाजसेवी, संघनिष्ठ, शासनसेवी श्री मंगतमलजी बरड़िया एवं मातुश्री श्रीमती झूमरदेवी की रत्नकुक्षी से हुआ। आपके पिता श्री मंगतमलजी बरड़िया सदैव चारित्र आत्माओं की सेवा व संघ की सेवा में अग्रणी रहे है। आपके पिताजी ने वर्षों तक सरदारशहर श्रीसंघ में अध्यक्ष पद पर अपनी विशिष्ट सेवाएं प्रदान की थी।

आप पांचों भाईयों स्व. श्री रतनलालजी, श्री पन्नालालजी, श्री बच्छराजजी एवं श्री गुलाबचंदजी बरड़िया में सबसे छोटे भाई है। जिन्होंने अपने पिता के साथ-साथ भाईयों से सदैव संस्कारों की धरोहर प्राप्त की है। आपका शुभ विवाह 23 मई, 1975 को श्रीमती जब्बरदेवी सुपुत्री श्रीमती कानीदेवी-स्व.श्री भंवरलालजी लुणिया सरदारशहर के साथ हुआ। श्रीमती जब्बरदेवी भी आदर्श सुश्राविका रत्न है जिन्होंने अपने सम्पूर्ण परिवार को संस्कारों की पूंजी प्रदान की है। श्री राजकरणजी बरड़िया ने युवाकाल में प्रवेश

करते हुए अथक लगन परिश्रम, श्रमनिष्ठा एवं आत्मबल तथा भाईयों के आशीर्वाद से अहमदाबाद में अपना व्यवसाय प्रारम्भ किया और आज एक प्रसिद्ध उद्योगपति के रूप में पहचाने जाते है।

आपने अपने पिता एवं ज्येष्ठ भ्राता श्री रतनलालजी बरड़िया से व्यवसायिक कौशलता प्राप्त की। उन्हीं के पदचिन्हों पर चलते हुए मानवसेवा को सर्वोपरि माना है। वर्तमान में आप श्री अ.भा. साधुमार्गी जैन संघ के दानपेटी योजना के संयोजक पद अपनी सेवाएं प्रदान कर रहे हैं। विशेष कार्यकुशलता के कारण आप संघ में दो बार राष्ट्रीय उपाध्यक्ष एवं एक बार राष्ट्रीय कोषाध्यक्ष पद पर अपनी सेवाएं प्रदान कर चुके हैं। इसके अलावा आप अनेक सामाजिक संस्थाओं के पदाधिकारी एवं ट्रस्टी भी है। वर्तमान में आप श्री साधुमार्गी जैन संघ अहमदाबाद में अध्यक्ष पद पर अपनी सेवाएं प्रदान कर रहे हैं। आपने श्री अ.भा. साधुमार्गी जैन संघ की विभिन्न प्रवृत्तियों, केन्द्रीय कार्यालय भवन निर्माण, अनेकों समता भवनों, साहित्य, श्रमणोपासक आदि अनेक प्रवृत्तियों में भामाशाह के रूप में अथक सहयोग प्रदान किया है। आप में आचार्य श्री नानेश एवं वर्तमान आचार्य श्री रामेश के प्रति अनन्य श्रद्धा भाव एवं भक्ति का कूट-कूट कर भरी हुई है। यह सभी गुण आपकी धर्मपत्नी श्रीमती जब्बरदेवी, पुत्र-पुत्रवधू दीपक-पायलजी, दीपक जो समता युवा संघ के सक्रिय कार्यकर्ता है तथा सामाजिक कार्यों में बढ़-चढ़कर हिस्सा लेते है। पुत्री-दामाद ज्योति-सिद्धार्थजी सेठिया-कोलकाता, जुली-मिठुनजी बोथरा-तेजपुर,

पौत्र-पौत्री मोहित, नित्याश्री में कूट-कूट के भरे हुए है। जो परिवार की यश एवं कीर्ति को आगे बढ़ा रहे है।

आपके भतीजे श्री मदनजी बरड़िया भी संस्कारों से ओत-प्रोत सुश्रावक रत्न है एवं आपकी बहिन श्रीमती मंजू-प्रदीपजी बोरड़, भतीजी-दामाद सुशीला-विमलजी नाहटा, सज्जन-पवनजी दुग्गड़, बबीता-संजयजी बैद, पौत्री-दामाद शिल्पा-विशालजी दुगड़ भी सेवा कार्यों में निरन्तर संलग्न है। आपके परिवार ने परम् श्रद्धेय आचार्य प्रवर 1008 श्री रामलालजी म.सा. के सरदारशहर चातुर्मास में सेवा के जो कार्य किये वह सदैव उल्लेखनीय एवं प्रशंसनीय रहेंगे।

बरड़िया परिवार का यह प्रशस्त सुयश-मानव सेवा की प्रेरणा देकर सदाचारी एवं समाज की प्रेरक शक्ति बना हुआ है। बरड़िया परिवार सेवा कार्यो हेतु समर्पित रहकर समाज का उत्थान एवं विकास करें इन्हीं शुभकामनाओं के साथ।

अनुक्रमणिका

खिलौने या रजोहरण?	:	9
मल्लयुद्ध की धुन	:	18
प्रधानमंत्री पद के लिए बुद्धि परीक्षा	:	29
सोना-जागना अगड़दत्त का	:	44
आरीसा भवन और अंगूठी	:	56
बाज और कबूतर	:	65
वह खांडे की धार चली	:	74
कानी हथिनी पर बैठी थी गर्भिणी रानी	:	95
चित्रकार की बेटी कैसे बनी पटरानी?	:	107

खिलौने या रजोहरण?

अब तो मुझे दीक्षा की अनुमति दे दो, सुनन्दा! धनगिरि ने अत्याग्रह से कहा।

धनगिरि अवन्ती देश में तुम्बवन नाम के सन्निवेश में रहने वाले दूभ्य सेठ का पुत्र था। उसका विवाह धनपाल सेठ की पुत्री सुनन्दा के साथ हुआ था। विवाह के कुछ समय पश्चात् ही धनगिरि ने दीक्षित होने की अपनी अभिलाषा प्रकट की थी, किन्तु उसकी पत्नी ने अनुमति नहीं दी, कहा कि वे उसे निराश्रित छोड़कर संसार कैसे त्याग सकते हैं?

तदनन्तर देवलोक से चलकर एक पुण्यशाली जीव सुनन्दा की कुक्षि में आया, तब धनगिरि ने पुनः अपनी पत्नी से दीक्षानुमति देने का आग्रह किया।

सुनन्दा बोली- अभी गर्भकाल पूरा होने दो एवं पुत्र का जन्म तो होने दो।

प्रिये, वह सब तो कुशलतापूर्वक होगा ही, किन्तु एक सशक्त आधार तुम्हारे लिए अस्तित्व में आ गया है, अतः अब साधु व्रत ग्रहण करने की मेरी अभिलाषा को पूर्ण होने में अपना सहयोग करो।

आपकी वैराग्य भावना इतनी ही प्रबल है तो अब मैं आपको नहीं रोकूंगी एवं पुत्राश्रय की आशा पर जीवित रहूंगी- कहते हुए सुनन्दा ने अपने पति धनगिरि को अश्रुपूर्ण विदाई दी।

धनगिरि ने तब आचार्य सिंहगिरि के समीप दीक्षा अंगीकार की। इन्हीं आचार्य के पास सुनन्दा के भाई आर्यसमित ने भी पहले दीक्षा ले रखी थी।

गर्भकाल पूर्ण होने पर सुनन्दा ने एक अत्यन्त प्रतापी पुत्र को जन्म दिया। जब उसका जन्मोत्सव मनाया जा रहा था, उस समय किसी स्त्री के ये शब्द उस बालक के कानों में पड़े कि यदि इस बालक के पिता ने दीक्षा न ली होती तो श्रेष्ठ होता। बालक इस कथन को सुनकर विचार में पड़ गया कि यह दीक्षा की क्या बात है। 'दीक्षा' पर वह गहराई से सोचता रहा और परिणाम स्वरूप उसे जाति स्मरण (पूर्वभव) ज्ञान उत्पन्न हो गया। इससे वह दीक्षा के महत्व को समझ गया और

उसने तभी अपना संकल्प बना लिया कि वह भी सांसारिक बन्धनों से मुक्त होकर दीक्षा ग्रहण करेगा तथा कुछ ऐसा उपाय भी करेगा जिससे उसकी माता भी वैराग्य से बाधक न बने और वह भी दीक्षा लेकर अपना आत्म-कल्याण साध ले।

बालक ने अपने संकल्प को पूरा करने का उपाय सोच लिया। उसने दिन-रात लगातार रोना शुरू कर दिया और कितना ही शान्त करने के प्रयत्नों के उपरान्त भी वह शान्त नहीं हुआ। माता ने भांति-भांति के खिलौने एवं अन्य साधन प्रस्तुत किए किन्तु बालक के रोते रहने में कोई अन्तर नहीं आया, इससे माता खिन्न होने लगी।

ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए आचार्य सिंहगिरि पुनः तुम्बवन पधारे। गुरू की आज्ञा लेकर मुनि धनगिरि एवं आर्यसमित जब भिक्षा के लिए बाहर निकलने लगे तब कुछ ऐसा शुभ शकुन हुआ, जिसे देखकर आचार्य ने उन्हें निर्देश दिया- देखो, इस शुभ शकुन का यह संकेत है कि आज तुम्हें कोई महान् लाभ होने वाला है, अतः अचित्त और सचित्त जैसी भी भिक्षा मिले उसे तुम ले आना (सचित्त भिक्षा से अभिप्राय दीक्षार्थी जीवधारी से था)। गुरु की आज्ञा शिरोधार्य करके दोनों मुनि नगर में चले गए।

उस समय सुनन्दा अपनी सखियों के साथ बैठी अपने बालक को शान्त करने का यत्न कर रही थी, जो लगातार रोये जा रहा था। तभी दोनों मुनि उधर से निकले। उन्हें देखकर सुनन्दा चिल्ला पड़ी- मुनि, इतने दिन तक बड़ी कठिनाई से इस बालक की रक्षा मैंने की है किन्तु इसे शान्त करना मेरे लिए असाध्य सा हो गया है, अतः अब इसे आप ले जाइए और इसकी रक्षा कीजिए।

उस कथन को सुनकर मुनि धनगिरि सुनन्दा के समीप चले गए तथा अपना भिक्षा पात्र खोलकर खड़े हो गए। व्यथित और निराश सुनन्दा ने अपने पुत्र को उस पात्र में रख दिया। समीप खड़े श्रावक एवं श्राविकाओं की साक्षी में मुनि ने उस सचित्त भिक्षा को ग्रहण कर लिया। सबको अतीव आश्चर्य हुआ यह देखकर कि पात्र में पहुँचते ही बालक ने अपना रोना बंद कर दिया।

बालक को लेकर मुनि आचार्य के पास पहुँचे। आते हुए उन्हें गुरु ने दूर से ही देखा और पूछा- शिष्य, अपने पात्र में वज्र के समान ऐसा भारी पदार्थ क्या ले आए हो? पास पहुँच कर मुनि ने उस पात्र पर से झोली हटा दी। गुरु उस बालक को देखकर अतिशय रूप से प्रसन्न हुए एवं बोले- यह बालक अतीव तेजस्वी एवं प्रतिभाशाली है। मेरा मानना है कि यह बड़ा होकर

शासन का आधारभूत बनेगा। इस कारण मैं इसका नाम 'वज्र' रखता हूँ। वज्र-वज्र के समान सुदृढ़ सिद्ध होगा।

वज्र बालक को तब संघ के सुपुर्द कर दिया गया कि उसका समुचित रीति से लालन-पालन किया जाए। मुनिजन अन्यत्र विहार कर गए तथा संघ की देखरेख में वज्र सुखपूर्वक अभिवृद्ध होने लगा। वज्र को उस अवस्था में देखकर सुनन्दा संघ के पास आई और अपने बालक को मांगने लगी। संघ ने स्पष्ट कह दिया कि बालक उनके पास दूसरों की धरोहर है, अतः वे किसी भी दशा में उसे नहीं सौंप सकेंगे।

जब आचार्य सिंहगिरि का अपनी शिष्य मण्डली के साथ पुनः वहाँ पधारना हुआ तो सुनन्दा उनके पास पहुँची और अपने बालक को वापिस उसे दे देने का निवेदन करने लगी। जब उन्होंने उसके निवेदन पर ध्यान नहीं दिया तो सुनन्दा राजा के पास पहुँची और उसने राजा को एक माता के पक्ष में न्याय करने की गुहार की। राजा ने न्याय करने का आश्वासन दिया।

राजा ने आदेश दिया कि एक ओर माता सुनन्दा बैठ जाए तथा दूसरी ओर पिता मुनि धनगिरि एवं अन्य साधु। बालक को दोनों के बीच में खड़ा किया जाए।

बालक जिसकी पुकार पर चला जाएगा, बालक उसी का होगा। आदेशानुसार व्यवस्था की गई तथा राजा ने कहा- पहले बालक को उसके पिता मुनि धनगिरि पुकारें।

इस पर नगर निवासियों ने निवेदन किया- राजन्, बालक पर प्रथम अधिकार माता का होता है अतः माता पर दया करके पहले माता को पुकारने का आदेश प्रदान किया जाए। राजा ने तब वैसा आदेश दे दिया।

माता सुनन्दा अपने पास भांति-भांति के खिलौने तथा खाद्य पदार्थ लेकर बैठी थी जबकि मुनि धनगिरि एवं अन्य साधुओं के पास रजोहरण आदि संयमीय उपकरण मात्र ही थे। माता ने सुन्दर खिलौने दिखाते हुए बालक वज्र को पहले अपनी तरफ आने के लिए पुकारा, किन्तु बालक अपने स्थान से नहीं खिसका। माता ने नानाविध यत्न किए, फिर भी वह टस से मस नहीं हुआ।

तब राजा की आज्ञा होने पर उस बालक के पिता मुनि धनगिरि ने उसे अपनी ओर आने के लिए पुकारा- हे वज्र, यदि तुमने निश्चय कर लिया है तो धर्माचरण के प्रतीक एवं कर्म रज को पौंछ देने वाले इस रजोहरण को स्वीकार करो। यह कहकर पिता ने अपना रजोहरण सामने कर दिया।

पिता की पुकार सुनते ही बालक वज्र मन्द गति से चलता हुआ पिता की ओर बढ़ने लगा। वहाँ पहुँचकर उसने उस रजोहरण को ग्रहण कर लिया। इस पर राजा ने बालक को साधुओं को सौंपे जाने का अपना निर्णय सुना दिया।

इस सारे घटनाचक्र का तीखा प्रभाव पड़ा सुनन्दा के हृदय पर। वह विचार करने लगी- मेरे भाई ने दीक्षा ली, पति ने दीक्षा ली और पुत्र भी इस प्रकार उसका न बन सका- यह कैसी विडम्बना घटी है। फिर मुझे ही इस संसार से क्या प्रयोजन है? तब उसने भी दीक्षा ले ली तथा इस प्रकार बालक वज्र का मनोरथ सर्वांशतः सफल हुआ।

बालमुनि वज्र का दीक्षाकाल सबको आश्चर्यान्वित करता हुआ आरम्भ हुआ। अध्ययन करना प्रारम्भ किया तो द्रुतगति से उन्होंने ग्यारह अंग सूत्रों का ज्ञान स्थिर कर लिया एवं वे पूर्वों का ज्ञान भी प्राप्त करने लगे। तब से सूत्र वाचना की ओर आकर्षित हुए, किन्तु वे सबसे छोटे मुनि थे, अतः सूत्र वाचना अर्थात् अन्य मुनियों को सूत्र पठन-पाठन का कार्य उन्हें कैसे सौंपा जाता? उन्होंने एक उपाय किया।

एक समय आचार्य शौच निवृत्ति के लिये शिष्यों सहित बाहर भूमि पधारे। तब वज्र मुनि उपाश्रय में अकेले रह गए। उन्होंने सभी साधुओं के वहाँ पड़े पात्र, वस्त्र आदि उपकरणों को इस क्रम से पंक्तिबद्ध जमाया जैसे वे उपकरण न होकर सूत्र वाचना लेने वाले मुनि बैठे हों। फिर उनके बीच में बैठकर अर्थ-गाम्भीर्य पर विस्तृत विवेचना करते हुए वे सूत्र वाचना देने लगे। आचार्य लौटकर आ रहे थे तो उन्होंने वज्रमुनि की जोर-जोर से आ रही आवाज सुनी। वे चौंक उठे कि यह क्या हो रहा है? वे उपाश्रय से बाहर ही रुक कर देखने लगे और वज्रमुनि की सूत्र-वाचना का ढंग देखकर दंग रह गए। इतना अल्प अनुभव फिर भी इतना गम्भीर विश्लेषण। अवश्य ही यह श्रुतधर हो गया है और इस दृष्टि से इसे छोटा समझ कर मुनि इसकी अवज्ञा न करें, इसलिए सबको अप्रत्यक्ष संकेत करना होगा। रात्रि में आचार्य ने मुनियों से कहा मैं अमुक गाँव के लिए विहार करना चाहता हूँ, वहाँ कुछ समय लग सकता है। सभी मुनि भक्तिपूर्वक वज्रमुनि से सूत्र वाचना लेने लगे एवं मन्द बुद्धि मुनि भी जटिल तत्वों एवं सूत्राशय कोआसानी से हृदयंगम करने लगे। इससे वज्रमुनि की मान्यता बहुत बढ़ गई।

एक दिन कई मुनियों ने एक साथ आचार्य से प्रार्थना की- कृपा करके हमारे लिए सूत्र वाचना का कार्य सदा के लिए वज्रमुनि को सौंप दीजिए। यह सुनकर आचार्य को परम प्रसन्नता हुई, उन्होंने कहा- वज्रमुनि के प्रति तुम्हारा विनय एवं सद्भाव शुभ है। अब वाचना का कार्य वे ही किया करेंगे। उन की ज्ञान ग्रहण की अद्भुत शक्ति को परख कर मैंने पहले से ही उन्हें अपना समस्त ज्ञान लिखा दिया है।

तदनन्तर वज्रमुनि ने अवन्ती नगरी में स्थिर वास कर रहे भद्रगुप्त आचार्य से विनयपूर्वक दस पूर्व का ज्ञान भी सीखा एवं अन्ततः आचार्य सिंहगिरि ने अपनी अन्तिम अनशन से पूर्व वज्रमुनि को ही अपना उत्तराधिकारी आचार्य बनाया।

इस प्रकार बाल्यकाल में ही खिलौनों के स्थान पर रजोहरण का चुनाव कर 'वज्र' ने भरपूर जगत् कल्याण किया।

स्त्रोत- आवश्यक सूत्र।

सार- ऊर्ध्वोन्मुखी वृत्ति सर्व कल्याणकारी होती है।

❖ ❖ ❖

मल्लयुद्ध की धुन

ऐसा था अट्टण मल्ल!

उज्जयिनी का वह निवासी था और वहाँ के राजा जितशत्रु का उसे पूर्ण संरक्षण प्राप्त था। उस राज्य में ही नहीं, आस-पास के सभी राज्यों में उससे बढ़कर कोई मल्ल नहीं था- मल्ल विद्या में उसको पराजित करने की क्षमता किसी में नहीं थी। उज्जयिनी के सिवाय वह अन्य देशों में भी जाता, मल्ल युद्ध के लिये वहाँ के मल्लों को ललकारता और सब मल्लों पर अपनी जीत का डंका बजाकर अपार द्रव्य भी प्राप्त करता।

उस समय सो पारक नामक नगर में सिंहगिरि नामक राजा राज्य करता था। वह मल्ल युद्ध आयोजित कराने एवं देखने में अत्यधिक रुचि रखता था। एक बार अट्टण मल्ल वहाँ पहुँचा और उसने राजा सिंहगिरि से निवेदन किया- राजन्, आपके राज्य में जो भी ख्यातिनाम मल्ल हों, उन्हें मैं मेरे साथ मल्ल युद्ध करने की चुनौती देता हूँ।

राजा बहुत प्रसन्न हुआ- ऐसे अवसर की वह खोज में ही रहता था। उसने मल्ल युद्ध का आयोजन किया तथा अपने राज्य के बड़े-बड़े मल्लों को चुनौती भरा आमंत्रण भेजा। तब अट्टण मल्ल ने कई मल्लों के साथ युद्ध किया और एक-एक करके सबको पराजित कर दिया। राजा ने उसे विपुल धन देकर विदा किया।

किन्तु राजा सिंहगिरि को विचार उत्पन्न हुआ- यह अट्टण मल्ल यहाँ से विजयी होकर क्या गया है कि एक प्रकार से मेरे देश के मल्लों की मान मर्यादा मिट्टी में मिला कर गया है और सच मानूँ तो सारे देश का सम्मान घटा है। कारण, उसको यहाँ का कोई मल्ल पराजित नहीं कर सका इसलिए इस राज्य में किसी ऐसे बली पुरुष की खोज करनी चाहिए जिसे योग्य प्रशिक्षण देकर प्रभावशाली मल्ल तैयार किया जा सके।

इस विचार को कार्यान्वित करने का काम राजा ने शुरू कर दिया। चारों ओर खोज कराई गई। एक अत्यन्त बली मछेरे का चुनाव किया गया- मल्ल विद्या का उसे श्रेष्ठ प्रशिक्षण दिया गया। जल्दी ही वह विख्यात मल्ल बन गया। उसका नाम रखा गया- मच्छी मल्ल।

अगली बार जब अट्टण मल्ल उसी चुनौती के साथ वहाँ मल्ल युद्ध करने आया तब मच्छी मल्ल को उससे भिड़ा दिया गया। अट्टण मल्ल प्रौढ़ होने लगा था जबकि मच्छी मल्ल की धमनियों में एकदम ताजा युवा रक्त खौल रहा था। दोनों के बीच जमकर युद्ध हुआ और अन्ततः मच्छी मल्ल ने अट्टण मल्ल को पराजित कर दिया। वह अपना-सा मुँह लेकर उज्जयिनी लौटा।

मगर मल्ल युद्ध के अब तक के विजेता को अपनी पहली हार के बाद पल भर के लिए भी चैन नहीं पड़ रहा था। विजेता अपनी हार को पी नहीं सकता, उसका मन हार का बदला लेने के लिए तड़पने लगा। वह सोचने लगा- मच्छी मल्ल युवा है, उसका रक्त और बल ताजा है, जो निरन्तर अधिकाधिक शक्तिशाली होता रहेगा। इसके विपरीत मेरी बढ़ती हुई आयु के अनुसार मेरा बल निरन्तर क्षीण होता जाएगा। अतः मच्छी मल्ल को पराजित करने के लिए मुझे किसी नए युवा मल्ल को तैयार करना होगा।

इस विचार को कार्यरूप में परिणत करने के लिये अट्टण मल्ल किसी योग्य पात्र की तलाश में घूमने लगा। यों घूमते-घूमते वह सौराष्ट्र देश में पहुँचा। वहाँ

दुरूल्लकुतिया नामक गाँव के पास से जब वह गुजर रहा था तो वहाँ के उद्यान के पास उस ने कणबी जाति के एक ऐसे किसान को देखा जो एक हाथ से हल उठाकर खेत को जोत रहा था। उसके ऐसे बल को देखकर अट्टण मल्ल के पाँव वहीं ठिठककर रुक गए। तभी उसने देखा- उस किसान की स्त्री उसके लिए नाश्ते का सामान लेकर आ रही थी। कितना था वह नाश्ते का सामान? अन्न से बने विविध व्यंजनों से बड़ी टोकरी भरी हुई थी और पानी से भरा हुआ था बड़ा घड़ा। उस किसान ने वह सारा सामान देखते-देखते उदरस्थ कर दिया और इतना ही नहीं, नाश्ता करके पुनः अपना काम शुरू कर दिया।

अट्टण मल्ल समझ गया कि यह पुरुष योग्यतम मल्ल बनने के लिए सक्षम है क्योंकि इसके शरीर की जठराग्नि अति प्रबल है। यदि इसको पौष्टिक खुराक विपुल मात्रा में खिलाई जाए तथा श्रेष्ठ रीति से मल्ल विद्या का प्रशिक्षण दिया जाए तो यह निश्चय ही विजेता मल्ल बन सकता है। वह उसके पास गया और बोला- भाई, यदि तुम मेरे कहे अनुसार चलो और करो तो मैं तुम्हें पर्याप्त धन दिलवा सकता हूँ।

कणबी किसान ने बेपरवाही से कहा- मैं कुछ नहीं कर सकता, जैसा मेरी स्त्री कहेगी, वैसा ही मैं करुंगा।

अट्टण ने उसकी स्त्री से वही बात कही तो उसने कहा- इस समय कपास की फसल पक रही है इसलिए ये तुम्हारे साथ यह फसल ले लेने के बाद ही आ सकते हैं। तब अट्टण ने उस कपास की फसल के पूरे मूल्य के रूप में पर्याप्त धनराशि उसकी स्त्री के हाथ पर रख दी और कहा- यह तुम्हारी कपास की फसल का पूरा लाभ मैं तुम्हें पहले ही दे देता हूँ, अब तो तुम अपने पति को मेरे साथ भेज दो।

उसकी स्त्री ने अपने कणबी किसान पति को हँसते हुए कहा- अच्छा, जा आओ। तब दोनों उज्जयिनी की ओर चल दिए।

उस कणबी किसान को उज्जयिनी ले जाकर अट्टण मल ने पौष्टिक खुराक के साथ मल्ल विद्या का कुशल प्रशिक्षण देना आरम्भ किया। कुछ ही समय में वह किसान दक्ष मल्ल बन गया। तब उसका नामकरण किया गया- फलिह मल्ल।

अगली बार जब अट्टण सिंहगिरि राजा के यहाँ जाने लगा तो उसने कणबी मल्ल को साथ में ले लिया। वहाँ पहुँचकर उसने पुराने स्वर में ही चुनौती दी- महाराज, मैं अपनी पिछली हार का बदला लेने के लिए आपकी सेवा में उपस्थित हुआ हूँ। कृपा करके आप अपने मच्छी मल्ल को बुलवाइए ताकि वह मेरे फलिह मल्ल से टकराकर हार का मुँह देख सके।

अरे अट्टण मल्ल, हमारे मच्छी मल्ल के बल को तुम पहचान चुके हो। अब तुम्हारा फलिह मल्ल क्या उससे टकराकर जीत पाएगा? चुनौती मत फैंको, यह तुम्हें महंगी पड़ेगी- राजा ने व्यंग्यपूर्वक कहा।

राजन्, ऐसा न कहिए। आज का दिन मच्छी मल्ल की करारी हार का दिन होगा।

तो ठीक है, मच्छी मल्ल को बुलाया जाए और उसका फलिह मल्ल के साथ दंगल रखा जाए- राजा ने आदेश दिया।

मच्छी मल्ल और फलिह मल्ल का द्वन्द युद्ध शुरू हुआ। दोनों टक्कर के मल्ल थे- कभी एक नीचे गिरता हुआ दिखाई देता तो कभी दूसरा, परन्तु दरअसल

कोई भी एक दूसरे को पछाड़ नहीं पा रहा था। दोनों एक-दूसरे से जटिलतापूर्वक उलझे हुए रहे, किन्तु कोई किसी को चित्त नहीं कर सका। जब बड़ी देर तक भी कोई किसी को हरा नहीं सका तो उस रोज के दंगल को बराबरी का घोषित करके दो दिन बाद उन्हीं का दंगल फिर कराने की राजा ने आज्ञा दे दी।

अपने स्थान पर पहुँच कर अट्टण ने फलिह मल्ल से पूछा- क्या तुम्हारे बदन पर कई जगह तेज मार लगी है? उसने कहा- हाँ, काफी तेज मार लगी है? इसी कारण मैं उसको पछाड़ नहीं सका। अट्टण ने जहाँ-जहाँ कणबी को दर्द था, वहाँ-वहाँ मालिश एवं औषधि आदि का प्रयोग करके उस मार का उपचार किया। दो दिन में उसका पूरा बदन फिर से तरोताजा और दंगल के लायक बन गया।

उधर मच्छी मल्ल को घमंड था अट्टण मल्ल को हराने का, किन्तु फलिह मल्ल को नहीं हरा सका, इसका उसे भारी खेद हो रहा था, क्योंकि इससे उसकी जमी हुई प्रतिष्ठा पर बड़ी आंच लगी थी। राजा ने भी उसे उसके बदन पर लगी मार की जगहों के बारे में पूछा ताकि वहाँ-वहाँ उपचार कराया जा सके। लेकिन शर्म के

मारे वह अपने दर्द को बता नहीं पाया तथा बिना उपचार कराए मार का दर्द भोगता रहा।

तीसरे दिन जब मल्ल युद्ध पुनः प्रारम्भ हुआ, तब फलिह मल्ल का शरीर तो पूरी तरह स्फूर्तिवान था किन्तु मच्छी मल्ल का शरीर भीतर ही भीतर भुगती जा रही मार की पीड़ा से बुरी तरह पीड़ित था। इस कारण मल्लयुद्ध में फलिह मल्ल उसे तेज-तेज पछाड़ें खिलाने लगा, जिन्हें मच्छी मल्ल सहन नहीं कर पाया। उसका जीर्ण शरीर क्षीण होता गया और अन्त में फलिह मल्ल के हाथों मच्छी मल्ल पराजित हो गया। अपना पराभव मच्छीमल्ल के लिए असहनीय हो गया। उसने अन्याय-शुद्धाचरण से फलिह मल्ल का मस्तक काट डाला।

खिन्न हो अट्टण मल्ल उज्जयिनी अपने घर पहुँचा। घर पहुँचते ही उसके पुत्र आदि कहने लगे- अब तो आप बलहीन हो गए हो। आपको अब कौन पूछेगा और कौन धन आदि पुरस्कार में देगा? घर और परिवार को भी अब आपका क्या संरक्षण मिल सकेगा? इस तरह आप सर्वत्र अनुपयोगी एवं अनाहत हो जाओगे।

अट्टण मल्ल कुछ भी बोल नहीं पाया, किन्तु सोचने लगा कि यदि उसके स्वयं के ही पुत्र ऐसी

अवमानना कर रहे हैं तो अन्य पुरुष तो उसका सम्मान करेंगे ही कब? वह खिन्न हो गया और खिन्नता की उसी मनोदशा में वह चुपचाप घर से निकल गया, देश से भी निकल गया और दूर चला गया।

कौशाम्बी जाकर अट्टण वहाँ एक योगी की सेवा में रहा, उसे प्रसन्न किया तथा उससे ऐसे रसायन की प्राप्ति की जिसे खाकर एक बार तो उसने अपने शरीर में जैसे नया बल उपलब्ध कर लिया। फिर योगी से विदा लेकर उज्जयिनी लौटा। वहाँ राज्य सभा में जाकर उसने मल्ल को युद्ध की चुनौती दी। राजा ने मल्लयुद्ध आयोजित किया, उसमें भाग लेने जितने भी मल्ल आए, अट्टण ने एक-एक करके उन सभी को पराजित करके सर्व विजेता की उपाधि प्राप्त की। राजा ने उसे विपुल मात्रा में धन भी प्रदान किया। घर जाकर उसने वह सारा धन अपने पुत्रों व परिवार जनों में बांट दिया। धन पाकर सभी खुशी से उछलने लगे।

किन्तु अट्टण का मन विरक्त हो उठा। वह सोचने लगा- जीवन भर मैंने इन्हें अपने शरीर के बल पर धन ला-लाकर पाला पोसा है- सबकी इच्छाएँ एवं आवश्यकताएँ पूरी की है। अभी भी धन मिल जाने से ये

सब प्रसन्न हो रहे हैं, किन्तु कल क्या होगा? जब यह धन खर्च हो जाएगा, इन्हें और धन की आवश्यकता होगी और ये सब मेरे मुँह की ओर ताकेंगे, तब मैं इन्हें इनका इच्छित धन कहाँ से लाकर दूंगा? मच्छी मल्ल के हाथों हार कर ही मेरा शरीर जीर्ण-शीर्ण हो चुका था, फिर भी रसायन से एक बार पुनः मैंने इस शरीर को बलवान बनाया, परन्तु उसकी भी अब तो कोई आशा नहीं है। जब मैं इन सबको धन नहीं दे पाऊंगा तो ये मेरे साथ कैसा व्यवहार करेंगे? इसकी एक झलक तो पिछली बार मेरे अपने पुत्र ही दिखा चुके हैं। यह संसार कितना स्वार्थी है? जब तक निकल सकता है, गन्ने का रस निकाल-निकालकर पीता रहता है, लेकिन जब वही गन्ना पूरी तरह से रसहीन हो जाता है तो क्रूर बन कर उसे बाहर फैंक देता है। इतना भी लिहाज नहीं करता कि जिससे सदा ही रस मिला है, उसे सम्हालकर तो रख दे। इसलिए अब इस संसार के लिए खपना व्यर्थ है....

भावों की उच्चता में अट्टण को वैराग्य हो आया और उसने दीक्षा लेकर अपना आत्म-कल्याण साधा।

अट्टण को मल्ल युद्ध की धुन थी। इस संसार में सभी को किसी न किसी बात की धुन लगी रहती है-

धन की, बल की, पद की या किसी भी अन्य सांसारिक प्राप्ति की। किन्तु वृद्ध होने पर तो कम से कम वह अपनी भ्रमपूर्ण धुन पर सोचता है और सच्चा ज्ञान प्राप्त प्राप्त करता है।

स्त्रोत- उत्तराध्ययन सूत्र।

सार- जो वृद्धावस्था में भी नहीं चेतता, वह डूब जाता है।

प्रधानमंत्री पद के लिये बुद्धि परीक्षा

अरे! अपने अश्व को रोक दो। देखते नहीं, यह राजभवन है, जहाँ हर कोई प्रवेश नहीं पा सकता है- बालक रोहक ने चिल्ला कर कहा।

अश्वारोही और कोई नहीं, स्वयं उज्जयिनी के महाराजा थे। वे चौंके- यहाँ कौनसा राजभवन है और यह बालक कौन है? अचानक उनकी दृष्टि सामने भूमि पर पड़ी तो वे और अधिक चौंके। शिप्रा नदी के किनारे की बालू रेत पर उज्जयिनी के राजभवन, दुर्ग, भवन आदि की यथावत् रूपरेखा खिंची हुई थी और वे जैसे उसके राजभवन के सामने ही खड़े हुए थे। वे अश्व से नीचे उतरे और पूछने लगे- यह हमारे नगर का नक्शा किसने बनाया है?

यह मैंने बनाया है। मेरे पिता ने मुझे आज ही पहली बार उज्जयिनी नगरी दिखाई है। वे कोई वस्तु भूल

गए सो मुझे छोड़कर पुनः नगरी की ओर गए हैं। मैंने यहाँ बैठे-बैठे अपनी याद ताजा करते हुए नगरी की रूपरेखा बालू रेत पर खींच दी है- रोहक ने गर्व के साथ कहा।

महाराजा स्तम्भित हो गए, उस बालक की स्मरण शक्ति एवं कलाकृति पर- पहली बार ही नगरी देखी और उसकी ऐसी वास्तविक रूपरेखा बना दी- निश्चय ही यह बालक अपूर्व बुद्धि का धनी है। यकायक उनके मस्तिष्क में यह बात कौंधी कि उन्हें अपने लिए एक अति प्रतिभाशाली प्रधानमंत्री की आवश्यकता है, क्या उस पद के बीज इस बालक में नहीं खोजे जा सकते?

बालक, तुम कौन हो, तुम्हारे पिता क्या करते हैं, तुम कहाँ रहते हो? राजा ने पूछा।

इस सारी जानकारी से आपको क्या करना है? पहले यह बताएँ कि आप कौन हैं? बालक की सतर्कता से राजा और अधिक प्रसन्न हुए।

मैं उज्जयिनी नगरी का महाराजा हूँ। अब तुम अपने प्रश्नों के उत्तर दो।

बालक विनम्रता से झुक गया, बोला- महाराज, मेरा नाम रोहक है। मेरा पिता भरत एक नट है और हम पास के नटों के गाँव में रहते हैं।

अच्छा- कहकर महाराजा रवाना हो गए, यह सोचते हुए कि इस बालक की बार-बार बुद्धि-परीक्षा कराई जानी चाहिए तथा उनमें यदि यह सफल रहे तो आगे के लिए निर्णय लिया जाना चाहिए।

एक दिन नटों के गाँव में राजा का यह आदेश सुनाया गया कि वे सब मिलकर राजा के योग्य ऐसा मण्डप तैयार करें जिससे गाँव के बाहर वाली बड़ी शिला बिना निकाले ही मंडप की छत बन जाए।

रोहक मन ही मन समझ गया कि राजा का यह आदेश उसी की बुद्धि परखने के लिए भेजा गया है। चिन्ता कर रहे गाँव वालों को रोहक ने तरकीब बता दी- पहले शिला के चारों ओर की जमीन खोद लें, फिर शिला के चारों कोनों पर थम्भे लगाकर नीचे की जमीन भी खोद डालें- तब सुन्दर मण्डप बन जाएगा और उस शिला का तला उस मण्डप की छत- जैसी कि राजा चाहते हैं।

सब लोगों ने मिलकर मण्डप बना दिया और उसकी सूचना राजा को करा दी गई। राजा ने आकर देखा तो उसके आश्चर्य की सीमा नहीं रही। उसने पूछा- यह किसकी बुद्धि का चमत्कार है? सभी ने एक स्वर से कहा- रोहक की।

कुछ समय बाद राजा ने एक मेष नटों के गाँव में भेजा और आदेश दिया कि पन्द्रह दिन के बाद हम इस मेष को वापिस मंगाएंगे, तब उसका वही वजन रहना चाहिए जो वजन उसका आज है। वजन न घटे, न बढ़े। फिर सबके सामने मेष को तौलकर वजन बता दिया गया।

फिर, गाँव वाले चिन्तित हुए और उनकी चिन्ता मिटाई रोहक ने। उसने सुझाव दिया- इस मेढ़े को घास आदि पदार्थ खाने के लिये यथासमय दिया करो किन्तु इसके सामने एक व्याघ्र (भेड़िया) भी बांधे रखो- वजन न घटेगा (भोजन के प्रभाव से) और न बढ़ेगा (व्याघ्र के भय के प्रभाव से)- वह बराबर रहेगा।

ऐसा ही हुआ और राजा ने फिर गाँव के लोगों से पूछा- यह किसकी बुद्धि का चमत्कार है? उन्होंने एक स्वर से उत्तर दिया- रोहक की।

एक दिन उस गाँव के लोगों के पास राजा ने एक मुर्गा भेजा और आदेश दिया कि दूसरे मुर्गे के बिना ही इस मुर्गे को लड़ना सिखाओ और पक्का लड़ाकू बनाकर वापिस भेज दो। उसके लड़ाकूपन की यहाँ जाँच की जाएगी।

गाँव वाले फिर हैरान- यह रोज-रोज की मुसीबत है? पर रोहक जो था, उनकी चिन्ता मिट गई। रोहक ने कहा- यह कार्य मैं कर लूंगा। उसने उस मुर्गे के सामने एक बहुत बड़ा दर्पण रख दिया। मुर्गे ने उसमें अपनी आकृति देखी और समझा कि यह कोई दूसरा मुर्गा है- बस वह खीज उठा और उससे लड़ने के लिए तैयार हो गया। तैयार क्या हुआ- बराबर लड़ता ही रहने लगा, क्योंकि थके तो वही थके- दर्पण के भीतर का मुर्गा तो थकने से रहा? लड़ने का जो जोश और पैनापन असली मुर्गे का होता, वही उसे दर्पण के भीतर के मुर्गे का दिखाई देता। यह देखकर असली मुर्गे का जोश और पैनापन बढ़ता ही जाता और वह अनथक रूप से लड़ता जाता।

इस प्रकार वह मुर्गा कुछ ही समय में पक्का लड़ाकू बन गया। रोहक ने गाँव वालों के हाथ मुर्गा

वापिस राजा को भिजवा दिया। राजा ने अपने सामने उस मुर्गे की जाँच करवाई और उसके पैने लड़ाकूपन को देखकर बहुत ही प्रसन्नता दिखाई।

फिर पूछा- यह किसकी बुद्धि का चमत्कार है? सबने बताया- रोहक की।

अगली बार राजा ने नटों के गाँव में तिलों से भरी हुई कुछ गाड़ियाँ भेजी और कहलवाया कि इनमें कितने तिल हैं- गिनती तुरन्त बताई जाए, देर न लगे।

गाँव वालों की ओर से रोहक ने गाड़ी वालों के साथ राजा को कहलवाया- महाराज को कहना कि हम कोई गणित शास्त्री नहीं हैं सो तिलों की गिनती करके बतादें, किन्तु फिर भी बता देते हैं- जितने आकाश में तारे हैं, उतने ही इन गाड़ियों में तिल हैं, तारों की गिनती वे ही करा लें।

उत्तर सुनकर राजा बहुत प्रसन्न हुआ। गाड़ी वालों से उसने पूछा- उत्तर देने की यह बुद्धि किसकी है? उन्होंने बताया- रोहक की।

एक दिन फिर नट ग्राम वासियों के पास राजा की यह आज्ञा पहुँची कि उनके गाँव के पास जो नदी है, उसकी बढ़िया बालू रेत से एक रस्सी बनाकर शीघ्र भेजें।

रोहक ने बुद्धि परीक्षा की वह चुनौती भी स्वीकार कर ली। रोहक ने गाँव वालों को कहा- आप राजा के पास जाकर यह निवेदन करें कि हम नट तो रस्सी पर नाचना जानते हैं, रस्सी बनाना नहीं जानते। फिर भी आपकी आज्ञा है तो बनाएंगे किन्तु नमूने के लिये आप अपने भण्डार से एक बालू की बनी हुई कोई रस्सी दिलवा दें।

तदनुसार- गाँव वालों ने राजा के पास जाकर निवेदन किया। राजा से कोई उत्तर देते नहीं बना, बोले- यह बुद्धि किसकी है? सबने बताया- रोहक की।

एक समय राजा ने नटों के गाँव में एक बूढ़ा बीमार हाथी भेजा और कहलवाया- यह समाचार मुझे नहीं दिया जाए कि हाथी मर गया है।

गाँव वालों ने हाथी की अच्छी तरह से देखभाल की, लेकिन थोड़े दिन बाद हाथी मर गया। अब आज्ञा को देखते हुए समस्या पैदा हुई कि हाथी की मृत्यु का समाचार राजा को कैसे दिया जाए?

रोहक ने युक्ति बता दी। गाँव वाले राजा के पास गए और बोले- महाराज, आज हाथी न उठता है, न बैठता है, न खाता है, न पीता है, न हिलता है, न

डुलता है, यहाँ तक कि साँस भी नहीं लेता और तो क्या, सचेतनता की एक भी चेष्टा उसमें नहीं दिखाई देती है।

राजा ने पूछा- क्या हाथी मर गया है?

गाँव वालों ने कहा- ऐसा तो आप ही कह सकते हैं, हम नहीं।

राजा निरुत्तर हो गये, पूछा- ऐसा उत्तर देने की बुद्धि किसकी है? सबने कहा- रोहक की।

एक दिन कुछ राजपुरुष नटों के गाँव में पहुँचे और राजाज्ञा सुनाई कि तुम्हारे गाँव में मीठे जल का जो कुआँ है उसे नगर को भेज दें।

कुछ गाँव वाले रोहक के पास पहुँचे, उसने चुपचाप उत्तर बता दिया। तब राजपुरुषों को उत्तर दिया गया- गाँव का यह मीठे जल का कुआँ स्वभाव से डरपोक है और वह स्वजातीय के सिवाय किसी दूसरे पर विश्वास भी नहीं करता, इसलिये इसको लेने के लिए नगर के कुएँ को यहाँ भेज दें- उसके साथ यहाँ का कुँआ निर्भय होकर चला आएगा।

राजपुरुषों ने लौटकर राजा को यह उत्तर सुनाया और रोहक की बुद्धि की सराहना की।

कुछ दिनों बाद नट ग्रामवासियों को राजा ने एक और आदेश भिजवाया कि उनके गाँव से पूर्व दिशा में जो उद्यान है, उसे वे पश्चिम दिशा में कर दें।

गाँव वालों को रोहक ने तरकीब बता दी कि अपना गाँव वहाँ से हटाकर उस उद्यान से पूर्व दिशा में बसा दो। तब वह उद्यान स्वतः ही गाँव से पश्चिम दिशा में हो जाएगा।

लोगों ने ऐसा ही करके राजा को सूचना दी। राजा ने पूछा- यह किसकी बुद्धि का चमत्कार है? सबने एक स्वर से कहा- रोहक की।

नट गाँव में राजा ने एक और आज्ञा भेजी कि बिना अग्नि खीर पका कर भेजें। सबने रोहक से पूछा, उसने बताया चावलों को पहले पानी में खूब अच्छी तरह भिगोकर उन्हें व गर्म किए हुए दूध को पतली थाली में डाल दो। उस थाली को चूने के पत्थरों पर जमा कर रख दो। उसके बाद चूने के पत्थरों पर धीरे-धीरे पानी का सिंचन करते रहो, खीर पक जाएगी।

वैसी खीर राजा के पास ले जाई गई। राजा ने विधि पूछी, गाँव वालों ने बता दी। राजा ने फिर पूछा-

यह खीर किसकी बुद्धि से पकाई गई है? सबने कहा- रोहक की।

बुद्धि की इन सारी परीक्षाओं के परिणाम से प्रसन्न होकर राजा ने रोहक को अपने पास बुलवाया, किन्तु आदेश दिया- रोहक न शुक्ल पक्ष में आवे, न कृष्ण पक्ष में, न दिन में आवे, न रात्रि में, न धूप में आवे, न छाया में, न आकाश से आवे, न पैदल चलकर, न मार्ग से आवे, न उन्मार्ग से और न स्नान करके आवे, न बिना स्नान किए, न रिक्त हाथ आए, न अरिक्त, लेकिन आवे अवश्य।

यह पहेली स्वयं रोहक के लिए थी। राजा की आज्ञा के अनुसार रोहक राजा के पास पहुँचा। राजा ने पूछा- क्या मेरी आज्ञा का पूरा-पूरा पालन किया गया है? यदि हाँ, तो कैसे?

रोहक ने बताया- मैंने सबसे पहले कण्ठ तक स्नान किया। फिर अमावस्या एवं प्रतिपदा के संधिकाल में सिर पर चालनी का छत्र धारण करके मेंढ़े पर बैठ कर गाड़ी के पहियों (गडार) के बीच के मार्ग से आपके पास पहुँचा हूँ।

फिर उसने राजा के सामने एक मिट्टी का ढेला रख दिया। राजा ने आश्चर्य से पूछा- यह क्या?

रोहक बोला- देव, गुरु और राजा से खाली हाथ नहीं मिलना चाहिए, इसलिए यह ले आया हूँ।

मिट्टी का ढेला क्यों? राजा ने पूछा।

आप पृथ्वीपति हैं, इस कारण पृथ्वी लाया हूँ। उत्तर सुनकर राजा को अतीव हर्ष हुआ।

राजा ने कहा- रोहक, अब तुम मेरे पास ही रहो।

राजा ने उसे अपने पास ही सुलाया। रात का पहला पहर बीत जाने पर राजा ने आवाज दी- रोहक, तुम जाग रहे हो या सो रहे हो? रोहक ने उत्तर दिया- राजन् जाग रहा हूँ। तुम क्या सोच रहे हो? राजा ने फिर पूछा। रोहक बोला- देव, मैं इस बात पर विचार कर रहा हूँ कि बकरी के पेट में गोल-गोल गोलियाँ (मिंगनियाँ) कैसे बनती है? रोहक की बात के रहस्य को राजा नहीं समझ पाया, अतः पूछ बैठा- अच्छा बताओ तो कैसे बनती हैं? रोहक ने बताया- राजन् बकरी के पेट में संवर्त्तक नामकी वायु विशेष होती है, उसी से उसका मल गोल गोलियों के रूप में ढल जाता है। फिर रोहक सो गया।

रात का दूसरा पहर बीतने पर फिर राजा ने रोहक को आवाज दी और उसके विचार के बारे में पूछा। रोहक ने कहा- देव, मैं यह सोच रहा हूँ कि पीपल के पत्ते का दंड बड़ा होता है या शिखा। राजा के उत्तर पूछने पर बोला- जब तक शिखा का भाग नहीं सूखता तब तक दोनों बराबर होते हैं। रोहक फिर सो गया।

रात का तीसरा पहर बीत जाने पर राजा ने पूछा और रोहक ने उत्तर दिया- देव, मैं यह सोच रहा हूँ कि गिलहरी का शरीर जितना बड़ा होता है, उसकी पूँछ भी उतनी ही बड़ी होती है या कम ज्यादा। मेरा निर्णय यह है कि दोनों बराबर होते हैं, तब रोहक सो गया।

चौथा पहर बीत जाने पर प्रभात काल हो गया और राजा जाग उठा। उसने रोहक को आवाज दी तो वह गाढ़ी नींद में सोया हुआ था। जब राजा ने अपनी छड़ी से उसके शरीर का स्पर्श किया तो वह एक दम जाग गया। राजा ने पूछा- रोहक, क्या सो रहे हो? बोला- नहीं, मैं जाग रहा हूँ।

तो फिर बोले क्यों नहीं?

मैं एक गम्भीर विचार में तल्लीन था।

क्या था वह?

मैं सोच रहा था कि आपके कितने पिता हैं? मैं यह जानना चाहता हूँ कि आप कितनों से पैदा हुए हैं?

राजा तमतमा उठा, किन्तु उसने अपने आपको नियंत्रित किया और पूछा, रोहक की बुद्धि में पूरा विश्वास करते हुए- ठीक है, बताओ, मैं कितनों से पैदा हुआ हूँ?

बता दूँ राजन्- आप क्रुद्ध तो नहीं होंगे?

नहीं, बता दो।

आप पाँच से पैदा हुए हैं।

किन-किन से?

एक तो वैश्रवण (कुबेर) से, क्योंकि आप कुबेर के समान दानशील हैं। दूसरे चांडाल से, क्योंकि शत्रुओं के लिये आप चांडाल के समान क्रूर हैं। तीसरे धोबी से, क्योंकि जैसे धोबी गीले कपड़े को खूब निचोड़ कर सारा पानी निकाल लेता है, उसी तरह आप भी दूसरों का सर्वस्व हर लेते हैं। चौथे बिच्छू से, जैसे बिच्छू निर्दयतापूर्वक डंक मारकर दूसरों को पीड़ा पहुँचाता है, उसी प्रकार

सुखपूर्वक निद्रा में सोये मुझ बालक को आपने अपनी छड़ी के अग्रभाग से जगाकर कष्ट दिया। पाँचवे अपने पिता से, क्योंकि अपने पिता के समान ही आप भी प्रजा का न्यायपूर्वक पालन कर रहे हैं। कहकर रोहक चुप हो गया, पर राजा गहरे विचार में पड़ गए।

राजा अपनी माता के पास पहुँचे और उसे एकान्त में ले जाकर पूछने लगे- बोलो माता, मेरे कितने पिता हैं?

माता ने लज्जित होकर कहा- पुत्र? तुम यह कैसा प्रश्न कर रहे हो?

राजा ने रोहक द्वारा कही हुई सारी बात अपनी माता को बता दी और कहा- माँ, रोहक इतना बुद्धिशाली है कि उसकी बात कतई झूठ नहीं हो सकती है।

तब राजा की माता ने कहना शुरू किया- पुत्र, यदि किसी को देखने आदि से मानसिक भाव का विकृत हो जाना भी तेरे संस्कार का कारण हो सकता है तो रोहक का कथन उचित है। जब तू गर्भ में था, तब मैं वैश्रवण देव की पूजा के लिए गई थी। कुबेर पूजा से लौटते समय एक धोबी कपड़ा निचोड़ते हुए व चाण्डाल

को भी देखा। एक बार अपने हाथ पर आटे का बिच्छू रखा उसके स्पर्श से सिहर गयी थी और अपने पिता का तो तू पुत्र है ही। यह विवरण सुनकर राजा रोहक की चामत्कारिक बुद्धि पर हतप्रभ हो गए- ऐसी गूढ़, पैनी और समाधान दायिनी बुद्धि- उन्होंने ऐसी बुद्धि किसी अन्य में कभी नहीं देखी थी।

राज्य सभा में बैठकर उन्होंने घोषणा की- आज से रोहक को इस राज्य का प्रधानमंत्री मनोनीत किया जाता है।

स्त्रोत- नंदी सूत्र टीका।

सार- औत्पत्ति की बुद्धि चमत्कारपूर्ण ही होती है।

❖ ❖ ❖

सोना-जागना अगड़दत्त का

अगड़दत्त था तो राजकुमार, किन्तु बुरी संगत से वह चोरी की बुरी आदत में फँस गया था। वह शंख नगर के सुंदर राजा का पुत्र था, पर अत्यधिक लाड-प्यार के कारण उसके बिगड़ते हुए संस्कारों की ओर किसी ने ध्यान नहीं दिया। लोग उसके राजकुमार होने से उसकी शिकायत करने में झिझकते। इस प्रकार अगड़दत्त का आतंक सारे नगर में व्याप्त हो गया।

इतना होने पर भी राजा सुंदर इस बिगड़ती हुई स्थिति की तरफ से बेखबर था। नागरिकों का कष्ट बढ़ता ही रहा, किन्तु सहन करने की भी एक सीमा होती है और जब उनकी सहनशक्ति जवाब देने लगी तो एक दिन प्रमुख नागरिकों ने गुपचुप एक बैठक की और राजकुमार द्वारा बनाए गए आतंक एवं कष्टपूर्ण वातावरण पर गम्भीरता से विचार किया। अन्त में उन्होंने यही निश्चय किया कि राजा को इस स्थिति से अब शीघ्र अवगत करवाया जाए।

तदनुसार वे प्रमुख नागरिक राजा की सेवा में पहुँचे। उन्होंने सविनय निवेदन किया- महाराज, इन दिनों हम सभी नागरिक भीषण कष्ट से पीड़ित एवं आतंकित हो रहे हैं।

राजा ने आश्चर्य से पूछा- मेरे राज्य में आपको किस बात का कष्ट है और फिर वह भी सभी नागरिकों को?

निवेदन करते हुए हमें बहुत संकोच हो रहा है राजन् कि कहीं आप बुरा न मान जाएँ। आप आज्ञा दें तो निवेदन करें।

आप निर्भय होकर अपनी बात कहिए। राजा प्रजा के लिए पिता समान होता है, उसे अपना दु:ख दर्द कहने में कैसा संकोच?

धन्य हो महाराज। वस्तुस्थिति यह है कि पिछले लम्बे समय से सारे नगर में स्थान-स्थान पर चोरियाँ हो रही हैं और उन पर कोई रोक नहीं लगाई जा सकी है।

अच्छा, कोतवाल को बुलाओ- राजा ने अपने सेवक को आज्ञा दी।

महाराज, कोतवाल को बुलाने की आवश्यकता

नहीं है। वे कुछ नहीं कर सकेंगे, क्योंकि इन सारी चोरियों के पीछे युवराज अगड़दत्त का हाथ है, बल्कि वे स्वयं चोरियाँ करते हैं। हम भी अत्यधिक त्रस्त हो जाने के बाद ही किसी तरह साहस जुटा कर आपकी सेवा में यह निवेदन करने के लिए उपस्थित हुए हैं।

यह सुनते ही राजा सुंदर एकदम स्तब्ध रह गए। इस तथ्य की कभी उन्होंने कल्पना तक नहीं की थी कि युवराज ही ऐसा अपराधी हो सकता है। लज्जा ने उनके चेहरे के तेज को दबा दिया। म्लानमुख होकर वे बोले- आप तनिक रुकिए, मैं राजकुमार को यहीं बुलवाता हूँ।

राजकुमार को तत्काल बुलवाया गया और अगड़दत्त वहाँ पहुँचा।

उसे देखते ही राजा क्रुद्ध हो उठे। उन्होंने तीव्र स्वर में पूछा- राजकुमार, ये नागरिक कह रहे हैं कि तुम्हारे लगातार अत्याचार से ये लोग त्रस्त और आतंकित हैं। क्या कहना है तुम्हें अपने इस आरोप के लिए ?

राजकुमार की जुबान तालू से सट गई, चेहरे पर हवाइयाँ उड़ने लगी। वह बोले तो क्या बोले? सबको आतंकित करने वाला आज स्वयं गम्भीर आतंक की

छाया में खड़ा था। राजा तक शिकायत पहुँच गई है तो अब न जाने क्या हो?

चुप क्यों खड़े हो? अपने आरोप का उत्तर दो- राजा ने कड़ककर कहा।

महाराज, मैं अपराधी हूँ- राजकुमार से और कुछ भी नहीं बोला गया।

ठीक है, अपराधी हो तो दण्ड स्वीकार करो। अपराध अत्यधिक गम्भीर है- तुम्हारे जैसे पतित व्यक्ति को राज्य का उत्तराधिकारी तो क्या, राज्य सीमा में रहने का भी अधिकार नहीं रहना चाहिए। तुम्हें देश निकाले का दण्ड दिया जाता है। तुम तुरन्त राजमहल और इस नगर को छोड़ दो तथा राज्य की सीमाओं से बाहर निकल जाओ। तुम जैसे राजकुलोत्पन्न कुसंस्कारी के लिये यही दण्ड होना चाहिए ताकि तुम्हारे पापों की छाया से यह राज्य कलंकित होता न रहे- राजा सुंदर ने अपना दण्डादेश सुना दिया।

राजकुमार अगड़दत्त सिर नीचा किए उसे सुनता रहा और बाद में सिर नीचा किए ही धीरे-धीरे बाहर निकल गया- राजमहल, नगर और राज्य से बाहर निकल जाने के लिए।

अपना देश छोड़कर दूर किसी अनजाने देश के मार्ग पर आगे बढ़ते हुए अगड़दत्त का मन पश्चाताप से विह्वल बना हुआ था। वह कोई सामान्य नागरिक नहीं था, राज्य का उत्तराधिकारी और युवराज था और उसे ही अपनी कुसंस्कारों, अपराध वृत्ति तथा अनुत्तरदायित्वपूर्ण प्रवृत्ति के कारण देश निकाले का पड़ भुगतना पड़ रहा था, परन्तु अब तो उसके सामने प्रायश्चित का भी कोई अवसर नहीं बचा था।

वह हताश और निराश चला जा रहा था- कहाँ जाएगा, क्या करेगा? कुछ भी पता नहीं। किन्तु नियति ने उसके लिये सौभाग्य की रचना कर दी थी, कारण उसके मन में प्रायश्चित की भावना भी बड़ी गहराई से उमड़-घुमड़ रही थी। राज्य की सीमा को लांघ कर चलते-चलते वह वाराणसी नगर पहुँचा। नगर में प्रवेश करते ही उसकी दृष्टि एक पाठशाला पर पड़ी, जहाँ पवनचण्ड नामक उपाध्याय विद्यार्थियों को विद्याभ्यास करा रहे थे। वह विनम्रतापूर्वक उनके पास पहुँचा तथा प्रणाम करके उनके सामने खड़ा हो गया।

उपाध्याय ने अगड़दत्त को एक नजर देखा और कोई चिन्ह देखकर उन्हें आभास हुआ कि वह राजपुत्र

होना चाहिए। उन्होंने उसे अपने पास बिठाकर पूछ ही लिया- वत्स, क्या नाम है तुम्हारा?

मेरा नाम अगड़दत्त है।

क्या तुम्हारा सम्बन्ध किसी राजा से है?

हाँ गुरुदेव, मैं शंख राज्य का राजकुमार हूँ।

फिर तुम यहाँ कैसे पहुँच गए हो? तब राजकुमार ने अपनी सारी आप बीती सच-सच सुना दी और अपने पास रखकर शास्त्र एवं शस्त्र का विद्याभ्यास करने की प्रार्थना की।

उपाध्याय का हृदय पिघल आया, उस का सारा वृत्त सुनकर और यह सुनकर कि उसने अपने जीवन की दिशा को अंधकार से प्रकाश की ओर मोड़ दी है। अपराधी से विनयी बने राजकुमार को उन्होंने सभी प्रकार की विद्याओं की शिक्षा देने का आश्वासन दे दिया। अगड़दत्त हर्षविभोर हो उठा।

अगड़दत्त ने अल्पकाल में ही शास्त्रों एवं शस्त्रों की विद्या में दक्षता प्राप्त कर ली। तब भी वह विद्याध्ययन में निरत रहा।

हे महाराज, मैं आपके दर्शन से कृतार्थ हो गया हूँ। आप मुझे अपनी शरण में ले लीजिए- एक भगवा वेशधारी संन्यासी ने सामने आए हुए बड़े संन्यासी के पाँवों पर अपना माथा धर दिया। बड़े संन्यासी के हाथ में कमंडलु था, सिर पर छत्र तथा पाँवों में खड़ाऊ थे। छोटे संन्यासी ने यह नाटक इसी कारण किया था कि उसे बड़े संन्यासी की जंघा पर ऐसा चिन्ह दिखाई दिया जो उसके चोर होने का प्रमाण था।

यह छोटा संन्यासी और कोई नहीं बल्कि अगड़दत्त था जो चोर की खोज में यह वेष धारण कर श्मशान में ध्यान धरे बैठा था। छोटे संन्यासी का प्रसन्न होना स्वाभाविक था कि उसे जिसकी तलाश थी, वह मिल गया था।

बच्चा, तुम कौन हो और मुझसे क्या चाहते हो? बड़े संन्यासी ने बड़ा घमण्ड दिखाते हुए पूछा।

महाराज, मैं तो एक दरिद्री और निर्धन पुरुष हूँ। चाहता हूँ कि मुझे किसी प्रकार खूब धन मिले। मुझे ऐसा लगा है कि आपके पास रहने से और आपका कहा करने से मुझे खूब धन की प्राप्ति हो सकेगी- अगड़दत्त ने निर्दोष अभिनय के साथ कहा।

तो चिन्ता न कर पुत्र, तेरी इच्छा मैं अवश्य पूरी करुंगा। जैसे सूर्य के उदय होने से अंधकार कहीं रहता नहीं, वैसे मेरे दर्शन कर लेने पर कोई भी दरिद्री नहीं रहता। चल मेरे साथ चल, मैं तुझे खूब धन दिलवाऊंगा- बड़े संन्यासी ने खूब प्रसन्न होकर कहा- मन ही मन वह प्रसन्नता कई गुनी थी कि उसके कुशल चौर्य्य कार्य में एक जवान सहायता के लिए मिल रहा है।

अगड़दत्त उस चोर के पीछे-पीछे हो लिया। दोनों समीपस्थ धर्मशाला में पहुँचे। आधी रात होने वाली थी, अतः उस बड़े संन्यासी ने अपना वेश उतार दिया और छोटे संन्यासी को भी कहा कि वह अपना संन्यासी का वेश उतार दे क्योंकि धन प्राप्त करने के लिए जाना है।

तब दोनों सादे वेश में एक साहूकार की हवेली पर चोरी करने के लिए पहुँचे। अगड़दत्त को बाहर खड़ा करके वह चोर भीतर घुसा। थोड़ी ही देर में वह हवेली में से वस्त्राभूषण की पेटियाँ, सोने-चांदी के बर्तन एवं अन्य सामग्री इतनी मात्रा में ले आया कि दोनों भी उसे उठाकर नहीं चल सकते थे। तब वह चोर बोला- तुम यहीं ठहरे रहो, मैं दो-चार लोगों को सामान उठाने के

लिए लेकर आता हूँ। तब वह चोर धर्मशाला पहुँचा तथा धन देने का लालच देकर वह पाँच यात्रियों को सामान उठाकर ले चलने के लिए ले आया। फिर सब लोग वह चोरी का सारा सामान उठाकर चले।

वे सब जंगल में पहुँचे। तब तक भी काफी रात बाकी थी सो चोर ने कहा कि अभी सब लोग यहीं सो जाओ, सुबह होने पर सबको अपने-अपने हिस्से का धन देकर विदा कर दिया जाएगा।

अगड़दत्त के तब पिछला अनुभव काम आया। सोते-सोते विचार किया कि चोर का कथन कभी विश्वास के योग्य नहीं होता, अतः सोये-सोये भी उसे जागे रहना चाहिए।

यों सोये-सोये भी जागे रहने की वृत्ति को मुनि वृत्ति कहा जाता है। सच्चा मुनि वही होता है जो सोया हुआ भी सतत् जागा रहता है अर्थात् द्रव्य से वह सोता है परन्तु भाव से जागता रहता है। इसी वृत्ति का दूसरा नाम है सतत् जागरुकता। जो जागता हुआ भी जागा रहे और सोता हुआ भी जागता रहे- वह निरन्तर सावधान और सतर्क बना रहता है। उस समय अगड़दत्त ने इसी वृत्ति का अनुसरण किया तथा सोता हुआ दिखाई देने पर भी जागता रहकर सावधान एवं सतर्क बना देखता रहा कि अब यह चोर क्या करता है?

उस चोर ने तब अपनी तलवार म्यान से बाहर निकाली और उसे वह पत्थर पर धीरे-धीरे घिसकर तीक्ष्ण बनाने लगा। इसी बीच अवसर देख अगड़दत्त धीरे से उठा और झाड़ियों के पीछे जाकर छुप गया। धार तीखी बनाकर चोर ने अपनी तलवार से सोये हुए सभी लोगों की गर्दनें उड़ा दी। फिर वह सारी धन सामग्री समेटने लगा।

अगड़दत्त ने गुप्त रीति से रखी हुई अपनी तलवार निकाली और चोर पर घातक वार कर उसके दोनों पैर काट डाले। वह भूमिसात हो गया। तब उस चोर ने अगड़दत्त से कहा- हे वत्स मैं भुजंग नामक चोर हूँ। उस श्मशान में मेरा पाताल गृह है। वहाँ मेरी भगिनी रहती है। वट वृक्ष के नीचे से तुम आवाज लगाओगे तो वह दरवाजा खोल देगी। तब मेरी बहिन को मेरी यह इच्छा बता देना कि उस सारी धन सामग्री को तथा स्वयं उसको मैंने तुम्हें अर्पित कर दी है। तुम मेरी बहिन से विवाह करके समस्त धन-सम्पदा के स्वामी बन जाना तथा वहाँ सुखपूर्वक रहना- इतना कहकर वह चोर मृत्यु को प्राप्त हो गया।

अगड़दत्त ने चोर की वह तलवार उठाई और श्मशान की ओर चल दिया। आवाज देकर दरवाजा

खुलवाया और उसने उसे चोर की तलवार सौंप दी– और कुछ नहीं बताया।

तलवार देखकर चोर की बहिन समझ गई कि उसके भाई का हत्यारा यही व्यक्ति है तथा इसे ही तलवार देकर यहाँ भेजने का मेरे भाई का यही मंतव्य है कि भाई की हत्या का इससे बदला लिया जाए।

चोर की बहिन अगड़दत्त को साथ लेकर भीतर के एक सुसज्जित कक्ष में गई और बोली– इस पलंग पर आप तनिक विराजें। मैं समझ गई हूँ कि मेरे भाई की क्या इच्छा थी। मैं स्नानशृंगार करके तुरन्त ही आपकी सेवा में प्रस्तुत होती हूँ। यह कहकर चोर की बहिन भीतर चली गई।

सोना और जागना अगड़दत्त का विशिष्ट हो गया था। सोया तब भी वह जागता रहा, पर अभी तो वह जाग ही रहा था– फिर असावधान कैसे रहता? चोर के कथन का विश्वास नहीं किया तो भला अब चोर की बहिन के कथन का भी विश्वास वह कैसे कर लेता? उसे जिस कक्ष में और जिस पलंग पर बिठाया गया था, दोनों उसे रहस्यमय लगे। इस कारण चोर की बहिन के भीतर जाते ही वह पलंग से उठकर उस कक्ष के एक दूर

के कोने में जाकर छुप गया, जहाँ से वह उस पलंग तथा चोर की बहिन के आने के मार्ग को भली-भांति नजर में रख सकता था।

थोड़ी ही देर में एक जोर का धमाका हुआ। अगड़दत्त ने देखा कि कक्ष की ऊपरी छत को तोड़ती हुई एक शिला तीव्र वेग उस पलंग पर गिरी है, जिस पर वह बिठाया गया था। उसने अपनी सतत् जागरुकता की नव विकसित वृत्ति का धन्यवाद किया।

तभी चोर की बहिन चिल्लाती हुई कक्ष में आई- दुष्ट, मेरे भाई को मारकर क्या तू जीवित रह सकता है? अब तो दब कर मर गया न भारी शिला के नीचे- कहती हुई बेफिक्री से वह जोरदार अट्टहास करने लगी।

अगड़दत्त ने आगे बढ़कर उसकी चोटी पकड़ी और उसे घसीटता हुआ राजा के सामने ले गया। राजा ने उसे शूली का दण्ड दिया, सारी सम्पत्ति राज्याधीन की तथा अगड़दत्त को अपना जंवाई व युवराज बनाया।

स्त्रोत- उत्तराध्ययन सूत्र। लक्ष्मीवल्लभ गपि रचित टीका।

सार- सतत् जागरुकता ही सच्चा साधु धर्म है।

❖ ❖ ❖

आरीसा भवन और अंगूठी

प्रतिदिन के समान ज्योंही षट्खंडाधिपति चक्रवर्ती भरत महाराज स्नान-मज्जन से निवृत्त हो शृंगार हेतु अपने आरीसा भवन में प्रविष्ट हुए, उनके स्वरूपवान देह की सहस्त्रों प्रतिच्छायाएँ चारों ओर के अनगिनत दर्पणों में प्रतिबिम्बित होने लगी। ऊपर, नीचे, तिरछे- सभी दर्पण उस भव्य विभूति को गोद में ले मानो उल्लसित होते हुए प्रतीत हो रहे थे।

भरत महाराज मुख्य शृंगार पीठिका के ऊपर के वृहदाकार दर्पण के सम्मुख जा खड़े हुए। अपने शरीर-सौष्ठव पर रागमय दृष्टि लगाए-लगाए ही उन्होंने बहुमूल्य वस्त्र धारण किए तथा उन पर रत्न जड़ित आभूषण- कण्ठहार धारण किया, अन्य अलंकार यथास्थान पहने, तब मस्तक पर सर्वजयी मुकुट धारण किया। फिर उन्हें अपने देह सौन्दर्य पर गर्व सा होने लगा।

मनोहारी आरीसा भवन में बहते जल सा उनका अनुपम सौन्दर्य परम श्लाघ्य दृष्टिगत हुआ। क्या कहना इस अद्वितीय सौन्दर्य का? वस्त्रालंकार से सुसज्जित स्वयं देवराज इन्द्र भी इतना सुन्दर न दिखाई देता होगा। अपना अनिंद्य रूप निहार भरत चक्रवर्ती फूले नहीं समा रहे थे।

वे सोचने लगे- यह सौन्दर्य अपूर्व है! सुन्दर देह पर सुन्दर सज्जा देखते ही बनती है! अहा! मैं कितना सुन्दर दिखाई दे रहा हूँ! मेरी इस सुन्दरता का सम्भवत: पूरे संसार में कोई सानी नहीं होगा। जब मैं राज्य सभा में प्रवेश करुंगा, एक भव्य ज्योति सी चमक उठेगी और सभासद् विमुग्ध भाव से देखते रह जाएंगे। निश्चय ही मेरे सुन्दर सुकोमल, सुदर्शनीय तन की प्रभा अद्वितीय होगी.....

अचानक उनके हाथ की एक अंगुली में से हीरे की अंगूठी नीचे गिर पड़ी और उनकी दृष्टि पड़ी उस अंगूठी विहीन अंगुली पर। वे चौंक पड़े। वह अंगुली शोभाहीन सी प्रतीत होने लगी.....

और विचार सरणि में अकस्मात् परिवर्तन आया- धारा की दिशा बदली गई। अरे, यह अंगुली कितनी विरूप बन गई है? जैसे इसकी सम्पूर्ण सुन्दरता ही लुप्त

हो गई हो। जो अंगुली अंगूठी के संयोग से एक क्षण पूर्व सुन्दर दिखाई दे रही थी, वही इस समय अंगूठी हीन हो जाने से कितनी सौन्दर्यहीन बन गई है? यह कैसा परिवर्तन है? यह कैसा सौन्दर्य है? इस सौन्दर्य को तो परखना होगा और जानना होगा कि इस सौन्दर्य का यथार्थ कैसा और कितना है?

भरत महाराज ने तब प्रत्येक अंगुली की अंगूठी उतारी, कण्ठहार उतारा, मुकुट दूर किया और धीरे-धीरे प्रत्येक अलंकार को अपनी शरीर से अलग कर दिया। वे अलंकार उतारते जाते और दर्पण में देखते जाते कि अलंकार सहित शरीर का वह भाग कैसा दिखाई दे रहा था और अब अलंकार रहित होकर वही भाग कैसा दिखाई दे रहा है? इस पर वे दोनों अवस्थाओं के दृश्यान्तर का अंकन करते जा रहे थे। विचार मग्न हो गए- सुष्ठु प्रतीत होने वाला अब वह देह-सौन्दर्य कहाँ चला गया है?

वह कैसा सौन्दर्य, जो एक पल तो रहे और दूसरे पल लुप्त हो जाए? किसी पदार्थ के संयोग से रहे और उसी पदार्थ का वियोग हो जाने से अदृश्य बन जाए? ऐसा सौन्दर्य, जो नश्वर हो, सौन्दर्य ही कैसे कहा जा सकता है? और जब मैं नश्वरता को देखता हूँ तो ये

आभूषण ही नश्वर नहीं है अपितु यह शरीर भी नश्वर ही है। तो इन नश्वर पदार्थों से सच्चे सौन्दर्य की उत्पत्ति कैसे हो सकती है?

अब तक मैं सौन्दर्य के भ्रम में चल रहा था और नश्वर सौन्दर्य को ही सौन्दर्य मान बैठा था। नश्वरता में से शाश्वत सौन्दर्य का प्रकटीकरण सम्भव नहीं।

और जिसे मैं सौन्दर्य मान रहा था, वह इस कारण नश्वर है कि अंगूठी अंगुली में थी तो अंगुली शोभायुक्त थी और अंगूठी गिर गई तो वही अंगुली शोभाहीन हो गई- इसमें अमरता एवं शाश्वतता की झलक कहाँ दिखाई देगी? जैसे अंगूठी के बिना अंगुली श्रीहीन हो गई वैसे ही आयु के प्रभाव से यह शरीर भी एक दिन शक्तिहीन, जर्जर और श्रीहीन हो जाएगा और तब अलंकार भी इस शरीर को शोभायुक्त नहीं बना पाएंगे। उस दिन की कल्पना करते हुए क्या आज के इस शारीरिक सौन्दर्य को मुझे उपयोगी और सार्थक मानना चाहिए?

भावों की धारा प्रवाहित होती रही और शुभता से धवल बनती रही- संसार के सकल दृश्य पदार्थ- धन, देह, परिवार, संगी एवं साथी तक सभी विनश्य स्वभाव

वाले हैं और इन सारे नश्वर पदार्थों के बीच में यदि कोई अनश्वर तत्व है तो वह है आत्मा। परन्तु मनुष्य कितना भ्रमित बना रहता है जो देह की सुन्दरता को ही सबकुछ मानकर जड़ता की साज-सज्जा में लगा रहता है? क्षणिक होते हुए भी इसे चिरस्थायी मान लेता है और इसी के सुखों की चेष्टा में सम्पूर्ण अमूल्य मानव जीवन को निरर्थक बना देता है। उबटन, मर्दन, स्नान, मंजन, शृंगार आदि से शरीर को वह अतुलनीय सुन्दर बनाने का यत्न करता रहता है, परन्तु उसकी नश्वरता से विस्मृत बना रहता है कितना मतिभ्रम हो जाता है इस मानव को? और मैं भी तो इसी मतिभ्रम में विचरण कर रहा था। शरीर सुख की मिथ्या कल्पनाओं में आत्म-सुख की वास्तविकता भी चिन्तन से दूर हो गई थी, किन्तु इस अंगूठी ने मेरी आँखें खोल दी हैं- मेरी आन्तरिकता को झंकृत कर दिया है.....

मेरी आत्मा में जागृति का अनूठा संचार हो रहा है और मैं अनुभव कर रहा हूँ कि संसार की विषैली परिस्थितियों से दूर हटकर यदि अपने ही भीतर गहरे उतरें तो वहाँ आत्मानन्द का स्त्रोत बिखरा पड़ा मिलेगा। उस समय ही शरीर और आत्मा के स्वरूप की भिन्नता स्पष्ट होगी तथा वास्तविकता का ज्ञान हो जाएगा। शरीर

को वास्तविक स्थिति से परिचित होने का अर्थ आत्मिक स्वरूप की ओर स्थायी गति से जाना है.....

अंधकार में प्रकाश स्पष्ट दिखाई देता है किन्तु प्रकाश की महत्ता को हृदयंगम करने के लिये अंधकार के स्वरूप को समझ लेना भी आवश्यक होता है। आज मैंने अंधकार को समझा है। अब मुझे शरीर की नश्वर सुन्दरता के विपरीत आत्मा का विमल सौन्दर्य स्फटिक मणि की भांति स्पष्ट दिखाई देने लगा है। इस अंगूठी ने मुझे जागृत किया है- आरीसा भवन ने आत्म परिचय कराया है।

मैं इस समय जड़ता से बहुत अलग हटकर चैतन्य की अद्‌भुत अनुभूति कर रहा हूँ। मैं अवश्यमेव शरीर के ममत्व को त्याग कर आत्मा के पूर्ण सौन्दर्य का साक्षात्कार करने के लिये आगे बढ़ूंगा और इस प्रगति के कारण आज का दिवस मेरे लिए सर्वोत्कृष्ट दिवस सिद्ध हो जाए तो कितना उत्तम रहे?

मेरा अपना सत्य स्वरूप मेरी अनुभूति में ही नहीं, दृष्टि में भी समाविष्ट होता जा रहा हैू। मैं केवल और केवल चैतन्य हूँ.....मेरी आत्मा- यह क्या- एकदम हल्की सी प्रतीत होने लगी है, जैसे ऊर्ध्वगामी बन गई

हो, स्वस्थ और सचेष्ट। अब मैंने भली प्रकार देख लिया है कि यह शरीर की सुन्दरता नश्वर है, अनित्य है, मात्र माया जाल और ममत्व का केन्द्र है और तभी अपनी आन्तरिकता में रमण कर रहा हूँ एवं अवर्णनीय दिव्य आनन्द का अनुभव ले रहा हूँ.....

अनित्य भावना के उत्कृष्ट चिन्तन के परिणामस्वरूप भरत महाराज को वहीं आरीसा भवन में ही कैवल्य ज्ञान एवं कैवल्य दर्शन की संप्राप्ति हो गई। उत्कृष्टतम विचार श्रेणी की चरम अवस्था का नाम ही तो कैवल्य ज्ञान है और इस परम ज्ञान की उपलब्धि ही मुक्तिगमन की सफल सूचिका होती है। भरत महाराज मुक्ति के अधिकारी बन गए।

देवों ने भरत महाराज का जय-जयकार किया, मंगल वाद्य बजाए एवं दिव्य पुष्पों की वृष्टि की। इन्द्र ने भरत महाराज के लिए साधु वेश प्रस्तुत किया। चक्रवर्ती भरत, मुनिभरत बन गए।

राज्य सभा भवन में सभी सभासद, राज्याधिकारी एवं प्रमुख नागरिक यथास्थान बैठ गए थे, किन्तु अभी तक भरत महाराज का सिंहासन रिक्त पड़ा था। चक्रवर्ती के शुभागमन में आज इतना विलम्ब क्यों हो रहा है?

सभी प्रतीक्षारत् थे तो विचारमगन भी।

अकस्मात् भरत महाराज ने सभा भवन में प्रवेश किया। सब स्तब्ध कि यह क्या? चक्री के स्थान पर मुनि, मुकुट के स्थान पर मात्र केशलुंचित मस्तक, बहुमूल्य राजसी वस्त्रालंकारों के स्थान पर श्वेत सादे साधुवस्त्र, हाथ में दंड के स्थान पर रजोहरण और पाँव पदस्त्राण रहित नग्न- यह कैसा परिवर्तन है?

इतना होने पर भी सब आश्चर्य से अभिभूत कि भरत महाराज के मुख मंडल पर आज जो तेजस्वी रूप प्रकाश मान हो रहा है- ऐसा रूप तो इनका पहले कभी नहीं देखा। सब तुलना करने लगे वस्त्रालंकारों से सज्जित प्रतिदिन के उनके रूप की, आज के वस्त्रालंकारों रहित उन के तेजस्वी स्वरूप से- कितना दिव्य अन्तर है? आज का स्वरूप सभी को अपार रूप से प्रभावित कर रहा था।

अब भरत महाराज मात्र छः खण्ड के महाराज नहीं, बल्कि सम्पूर्ण लोक के महाराज बन गए- सकल जगत् के महाप्रभु हो गए-

भरत महाराज ने पतित प्राणों में भी स्फूर्त चेतना फूंकने वाला धर्मोपदेश प्रदान किया- वे जो दण्डादेश

दिया करते थे धर्मोपदेश के प्रवर्तक बन गए। ज्ञानियों के वचनों में वह शक्ति होती है कि पाषाण हृदय तक हिल जाए। सभा में उपस्थित सर्वजनों ने नश्वरता एवं अनश्वरता के अन्तर तथा अनश्वरता के महत्व का प्रतिबोध पाया और सहस्त्रों भव्यों ने अपने मन-तुरंगों की वल्गा मुक्ति की दिशा में मोड़ दी।

अंगूठी ने भरत महाराज को एक अमूल्य शिक्षा दी- वे जगे, सहस्त्रों को उन्होंने जगाया। इसी प्रकार जगत् के अनेक पदार्थों में अनेक शिक्षाएँ भरी पड़ी हैं, किन्तु मानव की आत्म-सजगता ही उन्हें माध्यम बना सकती है, पर इससे ही क्या जड़ पदार्थों का वन्दन पूजन किया जाना चाहिए? क्या अंगूठी का भी वन्दन-पूजन किया जाना चाहिए था? वह नहीं तो प्रस्तर मूर्ति का ही क्यों?

स्त्रोत- भरह चक्कवट्टी चरियं। उत्तराध्ययन सूत्र

सार- भावों की उत्कृष्टता से आत्मोन्नति होती है।

❖ ❖ ❖

बाज और कबूतर

आज की दुनिया में देखें तो बाज और कबूतर के प्रतीक ही अधिक मिलते हैं- कुछ बाज और बहुत कबूतर। ये बाज अपने धन बल, सत्ता बल, बाहुबल आदि भौतिक बलों के जोर पर असहाय दुर्बल कबूतरों को सताया करते हैं। किन्तु ऐसा त्यागी पुरुष मुश्किल से ही मिलेगा, बल्कि नहीं मिलेगा जो किसी जोरावर बाज से किसी मजबूर कबूतर को बचाने के लिए कबूतर के बराबर अपने शरीर का माँस काटकर देने के लिए तैयार हो जाए।

प्राचीन युग में ऐसा त्यागी पुरुष हुआ है जिसने अपने शरीर का माँस काटकर दे दिया। वह त्यागी पुरुष था राजा मेधरथ।

पूर्वा महाविदेह क्षेत्र में सलिलावती विजय की पुंडराकिणी नामकी नगरी का राजा मेधरथ दया का सागर था। उसके दयालु हृदय की प्रशंसा सम्पूर्ण मनुष्य

लोक में ही नहीं, बल्कि देवलोक तक भी फैली हुई थी।

एक बार देवराज इन्द्र ने अपनी देवसभा में राजा मेधरथ की दयालुता की प्रशंसा करते हुए कहा- इस सारे संसार में मेधरथ राजा के समान अन्य कोई दयालु पुरुष नहीं है। उसका मन-मानस सदैव अनुकम्पा भावना से ओत-प्रोत रहता है। वह किसी भी प्राणी की रक्षा में वह अपना सर्वस्व तक बलिदान कर देने के लिए तत्पर रहता है। उसके दया, प्रेम और त्याग के गुण सभी सदाशयियों के लिये ग्राह्य माने जाने चाहिए। इस सत्य सराहना को न सह सके दो देव।

मिथ्याभिमान में धृष्टता घुली-मिली रहती है। मेधरथ राजा की दयालुता को लांछित कर दिखाने के लिए वे वहाँ से चल दिए।

अपनी राजसभा में राजा मेधरथ सिंहासन पर विराजमान थे। सभी सभासद राज्याधिकारी आदि यथास्थान बैठे हुए थे। राज्य की समस्याओं पर गंभीर विचार-विमर्श चल रहा था।

तभी अचानक न जाने कहाँ से उड़कर आता हुआ और बुरी तरह से थर-थर कांपता हुआ एक कबूतर राजा मेधरथ की गोद में गिर पड़ा। सब अति

आश्चर्य से उस ओर देखने लगे कि यह प्राणी कहाँ से आ गया और राजा की गोद में ही क्यों गिरा है? सबको सारी घटना रहस्यरंजित दिखाई दे रही थी।

कबूतर भी विचित्र था। गोद में गिरते ही मानवी वाणी में बोलने लगा- हे दया सागर, हे शरण वत्सल, मेरी रक्षा करो। मेरे प्राण संकट में हैं। मुझे इस समय केवल आपका ही आश्रय है। आप मुझे शरण में ले लो और मुझे बचा लो।

मेधरथ राजा ने कबूतर के प्रकम्पित शरीर पर अपना स्नेह कर फिराया और आश्वस्त वाणी में पूछा- तुम निश्चिन्त हो जाओ पक्षी, और मुझे अपना संकट बताओ। मैं अपने प्राण देकर भी तुम्हारी रक्षा करुंगा। दया से मैं कभी परांगमुख नहीं होता हूँ।

महाराज, एक दुष्ट बाज मेरा पीछा कर रहा है। उसने मेरे पर अकारण ही आक्रमण किया और मुझे आहत कर दिया। किसी प्रकार उसके पंजों से बचकर मैं आप तक भाग आया हूँ- कबूतर बोला।

अब तुम्हारा कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता, अब तुम मेरी शरण में हो- राजा ने उसे आश्वस्त करते हुए कहा।

इतने में क्रूर दिखाई देने वाला बड़ा सा बाज तीव्र गति से उड़ता हुआ उस राज सभा के भीतर तक

चला आया और वह भी मनुष्य की भाषा में क्रोधित स्वर से कहने लगा- राजा, इस मेरे भक्ष्य कबूतर को तुम्हारा आश्वासन व्यर्थ है। मैं इसका सबकुछ बिगाड़ने के लिए यहाँ आ पहुँचा हूँ, तुम उसे नहीं रोक सकते। मेरे भोजन को तुम्हें अपनी शरण में लेने का कोई अधिकार नहीं है।

राजा मेधरथ ने मधुरता के साथ कहा- हे बाज, मेरा आश्वासन अटल है। जो प्राणी मेरी शरण में आ गया है, उसे मैं तुम्हें कैसे सौंप दूँ?

आपकी शरण में आने से पहले की स्थिति पर आप विचार करें। मुझे कई दिनों से कोई शिकार नहीं मिला था और मैं बहुत भूखा था। तभी मुझे यह कबूतर मिला। मैंने इसे अपनी चोंच से पकड़ा, किन्तु उड़ते समय यह मेरी चोंच से छूट गया और आपकी शरण में चला आया। क्या आप किसी भी कारण से मेरे भक्ष्य को अपनी शरण में रोककर रख सकते हैं? जरा विचार कीजिए।

विचार तो तुम्हें करना चाहिए बाज, कि किसी निरपराध प्राणी को अपना भक्ष्य बनाने का तुम्हें ही क्या अधिकार है? जैसे तुम्हें अपना जीवन प्रिय है, वैसे ही क्या इस इस कबूतर को भी अपना जीवन प्रिय नहीं है?

मैं दूसरों के जीवन के लिये इतना विचार करुंगा तो भूखों नहीं मर जाऊंगा? आप जानते हैं कि सिंह और बाज सौ वर्ष तक भले भूखे रह जाएँ किन्तु अन्न कभी मुँह में नहीं डालेंगे। वे तो माँसभक्षी ही रहते हैं और मैं भी इस कबूतर का माँस खाकर ही मानूंगा।

तुम्हें जो भी करना हो तुम करो, पर यह कबूतर तो मेरा शरणागत है। यह तुम्हें कदापि नहीं मिलेगा।

राजन्, यदि आप इस कबूतर के लिए इतने ही दयालु हैं तो इसके समान मुझे भी अपनी शरण में ले लीजिए। भूख के कारण मेरे भी प्राण निकले जा रहे हैं। कबूतर को बचाना चाहते हैं तो मुझे भी बचाइए।

हाँ बाज, तुम्हारी यह बात मैं मान सकता हूँ।

ठीक है राजन्, यदि आप ऐसा ही चाहते हैं तो तराजू मंगा कर कबूतर के भार जितना अपने शरीर का माँस मुझे तौल कर दे दीजिए। उससे सन्तुष्ट होकर मैं यहाँ से चला जाऊंगा।

मेरा दया धर्म रहे, कबूतर की रक्षा हो जाए और तुम भी सन्तुष्ट हो जाओ- फिर मुझे मेरे शरीर की कोई परवाह नहीं है। तुम ठहरो और मेरे शरीर का माँस लेकर अपनी भूख मिटा लो।

राजा की आज्ञा से बड़े आकार का तराजू लाया गया और तीक्ष्ण धार वाला छुरा। राज सभा में उपस्थित सदस्य इस कारुणिक दृश्य को देखने के लिए अपने दिल थाम कर बैठे रहे किन्तु करुणा की मूर्ति अपने महाराज को वैसा न करने का निवेदन न कर सके। वे जानते थे कि उनके राजा मेधरथ दया के लिए अपना सर्वस्व बलिदान कर देने से रोके न जा सकेंगे। दया और रक्षा के विषय में वे कभी भी झुका नहीं करते थे, किन्तु एक कबूतर के लिए वे अपने प्राणों की बाजी लगा रहे हैं- यह दृश्य उनके लिये असह्य हो रहा था। वे श्रद्धापूर्वक आँखों में आँसू भरकर उसे देखने लगे।

मेधरथ ने अपने हाथ से तराजू के एक पलड़े में कबूतर को बिठाया। फिर छुरा लेकर खुद ही अपने शरीर का माँस काटने के लिए बैठे। सोचा- कबूतर का भार कितना सा होता है- एक जंघा का कुछ माँस काटकर रखने से तौल बराबर हो जाएगा। उन्होंने अनुमान से उतना माँस काटकर तराजू के दूसरे पलड़े में रखा।

लेकिन यह क्या? कबूतर वाला पलड़ा तनिक भी ऊपर नहीं उठा। जितना नीचा था उतना ही नीचा बना रहा। दया कभी दुबकती नहीं, पीछे नहीं हटती। उन्होंने और माँस काटकर रखा। पलड़ा नहीं हिला तो

पूरा पैर ही काटकर रख दिया। फिर भी पलड़ा वहीं का वहीं। यह कैसा रहस्य है? इसमें अवश्य कुछ अप्राकृतिकता है- कोई असाधारण बात है।

राजा ने एक पल के लिए भी नहीं सोचा उस असाधारण बात पर। होगी, उससे उन्हें क्या? उन्हें तो अब अपना वचन निभाना है- परिणाम चाहे जो हो। वे अपनी दूसरी जंघा का माँस काट-काटकर पलड़े में रखने लगे। फिर भी पलड़ा नहीं हिला तो उन्होंने दूसरा पैर भी पूरा काटकर उस पर रख दिया।

तब भी पलड़ा नहीं हिलना था, सो नहीं मिला। देवमाया में स्वाभाविकता कहाँ थी? किन्तु दयालु राजा तो अपनी स्वाभाविकता से ओत-प्रोत थे। उन्होंने अपना एक हाथ काटकर रखा, दूसरा हाथ भी काटकर रख दिया, फिर भी जब पलड़ा नहीं हिला तो उन्होंने अपना शेष शरीर भी पलड़े में रख दिया।

सभाजन धाड़ मारकर रो पड़े- सारे राजमहल और नगर में हाहाकार मच गया। एक छोटे से कबूतर की रक्षा के लिए राजा ने अपने जीवन का ही उत्सर्ग कर दिया- इस महान् बलिदान के प्रति सारी जनता नत-मस्तक हो रही थी।

किन्तु मिथ्याभिमानी देवों का वह छिछला

मिथ्याभिमान भी कब तक टिका रहता? राजा के अत्युत्कृष्ट दया भावों के सामने वह गलकर बह गया। देवों के मस्तक लज्जा से झुक गए।

तत्काल उन्होंने अपनी सारी माया समेटी। वहाँ न बाज रहा, न कबूतर और महाराज मेधरथ का शरीर भी पूर्ववत् हो गया। वे पूर्ववत् ही सिंहासनासीन भी हो गए। तब दो देवमूर्तियाँ मेधरथ के समक्ष नत-मस्तक खड़ी थी। राजा को नमस्कार कर वे लज्जा से संकुचित होते हुए बोले- हे महाराज, आपकी दिव्य दयालुता की हमारे देवराज ने अति आस्थापूर्वक जैसी सराहना की थी, हमारी परीक्षा की कठोरता पर वह वैसी ही प्रखर एवं बलिदानमय सिद्ध हुई है। हम आपके सामने नत-मस्तक हैं, यह मानते हुए कि देवों को सिद्धान्त रूप में कदापि नहीं मान लेना चाहिए कि वे प्रत्येक दृष्टि से मनुष्यों की अपेक्षा श्रेष्ठतर ही हैं। हमारा ऐसा मिथ्याभिमान भी आज आपकी अपूर्व दया के सामने गल कर नष्ट हो गया है। हमारी नम्र प्रार्थना है कि अतीव कृपा करके आप हमें अपनी धृष्टता के लिए क्षमा कर दीजिए।

महाराजा मेधरथ के मुख मण्डल पर दिव्य प्रभा विराजमान थी जिसमें से दया के साथ स्नेह व प्रेम का प्रकाश भी प्रवाहित हो रहा था। नम्र स्वर में वे बोले- हे देवलोक के देवों, क्षमा मांगने की कोई बात नहीं है।

आपका तो मैं आभार मानना चाहता हूँ कि आपने मुझे अपनी दयावृत्ति की अटलता का परिचय पाने का सुअवसर दिया। सोना आग में नहीं तपता तब तक उसकी शुद्धता का भी परिचय कहाँ मिलता है?

यह तो आपकी महानता है, महाराज, हम तो आपके क्षमाप्रार्थी हैं ही- कहकर दोनों देव वहाँ से अन्तर्धान हो गए।

दया सम्राट मेधरथ को तब अपना साम्राज्य बहुत छोटा दिखाई देने लगा क्योंकि उनकी दया का विस्तार तो अपार क्षेत्र तक प्रसारित हो गया था, उन्होंने राज्य मोह आदि सारे ममत्वों का त्याग करके दीक्षा अंगीकार कर ली- सच्चे दया के सम्राट बन गए।

इसी अपूर्व त्याग के कारण उन्होंने तीर्थंकर गौत्र नाम कर्म का बंध किया और वे सोलहवें तीर्थंकर भगवान शान्तिनाथ बने।

स्त्रोत- उत्तराध्ययन सूत्र। ज्ञाताधर्म कथा

सार- दया हृदय को फूल से भी कोमल बना देती है।

❖ ❖ ❖

वह खांडे की धार चली

वह खांडे की धार चली अर्थात्- उसने तलवार की धार पर चलने जैसा कठिनतम जीवन व्यतीत किया- एक दो वर्ष नहीं, वह पूरे जीवन पर्यन्त दु:खों के पहाड़ों को- झेलती रही, जबकि वह कोई सामान्य महिला नहीं, बल्कि एक राजरानी थी। उसका नाम था मदनरेखा।

मालव देश में सुदर्शन नगर का राजा था मणिरथ और मदनरेखा उसी के छोटे भ्राता युगबाहु को ब्याही गई थी। रूप-स्वरूप का वह जैसे भण्डार ही थी- उसके अलौकिक सौन्दर्य युक्त मुख मण्डल के समक्ष पूर्णिमा का चन्द्र भी लज्जित-सा दिखाई देता था। जिसकी भी दृष्टि उस पर पड़ जाती थी, उसे वह ठगा-सा देखता ही रह जाता था।

एक बार मदन रेखा का वही देदीप्यमान मुखमण्डल राजा मणिरथ के दृष्टिपथ में आ गया। वह

चकित होकर उसे देखता ही रह गया। उसे देखकर उसका मन उस पर मुग्ध ही नहीं हुआ, बल्कि विकारपूर्ण बनकर उसे किसी भी प्रकार प्राप्त कर लेने के लिए अधीर हो उठा। कैसे प्राप्त करे उसे? वह सोच में पड़ गया। उसके मन ने कहा- सोच की क्या जरूरत? वह तो राजा है- सर्व प्रकारेण शक्ति सम्पन्न है- कुछ भी करके वह अपनी इच्छापूर्ति कर सकता है। राजा ने तब ठान लिया- उसे कुछ भी करना पड़े, वह अपनी इच्छा को अवश्य पूर्ण करेगा।

तब गूंथा जाने लगा राजा मणिरथ का कपट-जाल। मदन रेखा उसके सामने नहीं थी, किन्तु उसका सुन्दर मुख उसकी दृष्टि से एक पल के लिए भी ओझल नहीं होता था। वह केवल उसी के विषय में सोचने लगा- कैसे आकर्षित करे उसे अपनी ओर? नाना प्रकार के प्रलोभनों से ही पहले उसका मन जीतना होगा। आखिर स्त्री है- उसका मन मोहने के लिए बहुमूल्य वस्त्राभूषणों का तीर ही चलाना चाहिए और इस प्रकार उसके कपट-जाल की गुंथाई आरम्भ हुई।

मणिरथ ने अपनी विश्वासपात्र परिचारिका को बुलाने भेजा, उसके आने पर अपने कपट जाल के सूत्र

उसे पकड़ाते हुए कहा- तुम मेरी विश्वासपात्र दासी हो, इस कारण यह नाजुक काम मैं तुम्हें सौंप रहा हूँ, जिसे तुम्हें पूरी चतुराई एवं गुप्त रीति से पूरा करना होगा।

महाराज, पहले अपना वह नाजुक काम तो बतावें। क्या मेरी चतुराई में आपको किसी तरह की शंका है? दासी ने राजा पर अपनी कुटिल मुस्कान फैंकी।

शंका नहीं है, इसीलिए तो तुम्हें ही बुलाया है, देखो, इस बात की किसी को भनक तक नहीं पड़नी चाहिए।

आप चाहते हैं उससे भी अधिक कुशलतापूर्वक ही मैं अपना कार्य सम्पन्न करूंगी। आप कृपया निश्चिन्त रहें।

तो सुनो। मैंने आज अपने छोटे भ्राता की रानी का मुख देखा है- उसकी अनुपम सुन्दरता को मैं उसे पाने के लिए विह्वल हो उठा हूँ। तुम्हें यही करना होगा कि वह मुझे मिल जाए।

दासी का माथा ठनका- कोई स्त्री कितनी भी पतित क्यों न हो- एक स्त्री के विरुद्ध अनाचार की बात सुनकर उसका हृदय हिल उठता है। वह बोली- यह क्या, महाराज? आप तो उसके लिए पिता समान हैं।

राजा क्रोधित हो उठा- मैंने तुम्हें उपदेश सुनाने के लिये नहीं बुलाया है। वह मेरे हृदय की रानी बन चुकी है, फिर वह कोई भी हो, मैं उसे प्राप्त करके अपनी काम पिपासा शान्त करना चाहता हूँ और तुम्हें मेरी इच्छापूर्ति करनी है।

क्रोध न करें, राजन्, मैं वैसा ही करूंगी। आप आज्ञा दें।

राजा ने तब अपने कपट जाल की व्याख्या की- तुम प्रतिदिन मेरे यहाँ से मेरे नाम पर मदनरेखा को बहुमूल्य वस्त्र, अलंकार, मेवे आदि उपहार में भेंट दो और उसे मेरे स्नेह से आप्लावित करो। सारा कार्य ऐसी चतुरता से करो कि वह मेरी ओर आकर्षित हो जाए। फिर एक दिन उसे मेरे शयन कक्ष में ले आओ।

जो आज्ञा-कहकर दासी चली गई।

दासी भीतर आने की आज्ञा मांगती है। मैं महाराज मणिरथ की विश्वस्त परिचारिका हूँ।

चली आओ- मदनरेखा ने कहा। तभी उसने देखा कि उस दासी के पीछे कई दासियाँ आकर्षक वस्त्राभूषणों एवं खाद्य पदार्थों से भरे हुए थाल लेकर भीतर आ गई।

आपके जेठजी ने ये सब खास आपके लिए मेरे हाथ भिजवाए हैं- उस दासी ने नम्रतापूर्वक निवेदन किया और पूछा- क्या मैं इन थालों को आपकी सेवा में रखवा दूँ?

यह जानकर मुझे प्रसन्नता हुई है कि मेरे जेठ जी का मुझ पर इतना स्नेह है- आखिर मैं उनकी पुत्री समान ही तो होती हूँ। पुत्री के लिए अपने पिता के उपहार लौटाने का कोई औचित्य नहीं होता। तुम उन्हें रखवा दो- मदन रेखा ने सहर्ष उत्तर दिया।

तब ऐसे उपहारों का तांता ही लग गया- प्रतिदिन उसी दासी के साथ एक से एक बढ़कर उपहार मदन रेखा के पास मणिरथ की ओर से पहुँचने लगे। मदनरेखा उन्हें स्वीकार करती रही और समझती रही ये उपहार पिता सदृश स्नेह के प्रतीक स्वरूप हैं। वह मणिरथ की अधम वासना की तो कल्पना भी कैसे करती?

एक दिन वही दासी उपहार भेंट करके उसके पास बैठी और उसने बातों का सिलसिला शुरू किया- रानीजी, आपको महाराज के ये सारे उपहार कैसे लग रहे हैं? वे आपको बहुत चाहने लगे हैं।

मैं उनके स्नेह के लिये आभारी हूँ- मदनरेखा ने संक्षिप्त-सा उत्तर दिया।

वे नहीं चाहते कि आप उनके प्रति आप आभारी बनें, बल्कि उनके उपहारों को अपना अधिकार समझने लगें- दासी ने अपने मंतव्य का पहला संकेत खोला।

ज्येष्ठ के स्नेह के लिए कनिष्ठ अपना अधिकार भी मानें तो उसे समीचीन ही कहा जाएगा- बिना संकेत को समझे हुए उसने निर्दोष भाव से कहा।

महाराज अपने हृदय का सम्पूर्ण प्रेम आपको समर्पित कर देने के इच्छुक हैं। आप राजरानी नहीं, महारानी में और सम्पूर्ण राज्य के ऐश्वर्य का उपभोग करें- कुटिल दासी ने कुटिलता से कह ही डाला।

मदनरेखा युगबाहु की पतिव्रता पत्नी थी। उसकी ऐसी ओछी बात सुनकर वह भड़क उठी- क्या बक रही हो तुम मेरे सामने? जो कह रही हो, उसका अर्थ भी जानती हो?

उस अर्थ की ही गुप्त जानकारी आपको देने के लिये मैं आपको निवेदन कर रही हूँ कि आप महाराज की प्रणय प्रार्थना स्वीकार कर लीजिए और अपने जीवन को सुखों से भर दीजिए- दासी ने सोचा कि उसका तीर निशाने पर लग जाएगा।

ऐसी घृणित प्रार्थना की उसने कल्पना तक नहीं

की थी- वह हक्की-बक्की रह गई। क्या ये सारे उपहार पिता तुल्य जेठजी ने अपनी वासनापूर्ति की दुरिच्छा से भेजे थे- जिन्हें उसने स्नेह के प्रतीक माने? क्या कोई ज्येष्ठ इतना पतित हो सकता है कि अपने ही छोटे भाई की पुत्री तुल्य पत्नी के साथ दुराचार की बात सोचे? उसका गौरवर्ण मुखमण्डल रक्तवर्ण हो गया, उसकी लाल-लाल आँखों से अंगारे बरसने लगे- कठोर स्वर में वह बोली- दुष्ट दासी, ऐसी घृणित बात मेरे सामने प्रकट करने का तुमने साहस कैसे किया? इसी वक्त यहाँ से निकल जा, वरना मुझसे बुरा और नहीं होगा।

तीर निशाने पर न लग कर पुनः उसी की ओर लौट आया था, वह दासी उस भीषण रूप को देखकर घबरा उठी- आप मुझे क्षमा करें। मैं तो वही कर रही थी, जो महाराज मणिरथ ने मुझसे करने को कहा था। इसमें मेरा कोई दोष नहीं है।

जो भी हो, तू एक पल के लिए भी मेरी आँखों के सामने न रह- मदनरेखा के स्वर से आग बरस रही थी जिसे वह दासी सहन कर पाने में असमर्थ थी। वह तत्काल वहाँ से चली गई और सीधी मणिरथ के कक्ष में पहुँची। उसने आपबीती सुनाई और सारी बात नमक मिर्च लगाकर कही।

मणिरथ के माथे भूत सवार हो गया। उसका कपट जाल तार-तार हो चुका था। परन्तु क्या कोई मदमस्त राजा पहले ही झटके में अपनी हार मान सकता है? जो वह चाहे, वह उसे न मिले यह वह कभी बर्दाश्त नहीं करेगा। तो क्या करेगा वह? प्रश्न वैसे ही सामने खड़ा था, उसका समाधान पा लेने के लिए वह अब तनिक भी नहीं ठहरेगा।

उसके दुष्चक्र का गंदा नाला फूटने लगा- यदि मदनरेखा ऐसी पतिव्रता है तो उसे पा लेना सरल नहीं है और इसका स्पष्ट आशय है कि जब तक युगबाहु जीवित है तब तक उसकी इच्छापूर्ति सम्भव नहीं। इस लिए अवसर खोजकर यही किया जाए कि युगबाहु न रहे- न रहेगा युगबाहु तो न रहेगा मदनरेखा का पातिव्रत्य धर्म। तब सम्पूर्ण रूप से उसे मेरी होकर ही रहना होगा।

और तब वह गंदा नाला आगे से आगे बहने लगा।

अपने पति के भावुक मन को आशंका के जाल में उलझा कर पीड़ा क्यों पहुँचावे? जब स्थिति विषम बन जाएगी तभी कह देगी। इस समय तो उनके आनन्दी मन को सुख पहुँचाना ही उसका कर्त्तव्य है।

एक बार बसन्त ऋतु के समय वे दोनों नगर के बाह्य भाग में स्थित उपवन में भ्रमण करने हेतु आए थे और सोच रहे थे कि वे रात्रि का अधिकांश भाग प्रकृति के इस रम्य वातावरण में ही व्यतीत करें। तभी शीतल, मन्द, सुगंध पवन की ऐसी हिलोर आई कि उनके तन-मन पुलकित को उठे। वे लता गुल्मों में विचरण करते रहे और दो आँखें अज्ञात रूप से उनका पीछा करती रहीं।

थककर उन्हें विश्राम करने की इच्छा हुई। वे दोनों रम्भागृह में चले गए। मणिरथ अवसर की टोह में था ही। रात्रि के सघन अन्धकार का लाभ उठाते हुए उसने जब अपने भाई को रम्भागृह में प्रवेश किया हुआ जाना तो वह भी उसमें घुसने की नीयत से दरवाजा खोलने लगा पर वह अन्दर से बन्द था। मणिरथ ने युगबाहु को आवाज दी।

अकस्मात् मणिरथ को आया जानकर युगबाहु चकित हो गया।

नाथ! आपके भाई का इस समय आगमन शुभ नहीं है। आप उनसे सावधान रहें। उसने संक्षिप्त में इतना ही कहा। युगबाहु ने कहा प्रिय, तुम्हारा संशय व्यर्थ है। वे मुझे पुत्र से भी बढ़कर मानते हैं।

युगबाहु ने उठकर दरवाजा खोला, पर मणिरथ के रूप को देखकर उसका मन भी आशंकित हुआ। उसने सहज ही प्रश्न कर लिया। भैया! आप और अभी?

हाँ भाई, मुझे जब यह ज्ञात हुआ कि वन भ्रमण को आए हुए हो तो मुझे लगा कोई तुम्हारा अहित नहीं कर दे इसलिए मुझे चैन नहीं पड़ा, और मैं अर्द्धरात्रि में ही उठकर इधर आ गया।

युगबाहु का मन मणिरथ के वचनों से और अधिक आशंकित हो गया। उसने कहा भैया! मैं अब दूध मुँहा बच्चा तो हूँ नहीं, आप व्यर्थ ही चिन्ता कर रहे हैं।

मणिरथ समय गंवाना नहीं चाहता था अतः कहा भाई क्या करुं तुम्हारा अनुराग सही मुझे खींच लाया। तुम विश्राम करो, और हाँ थोड़ा पानी तो पिलादो। युग बाहु जैसे ही पानी भरने को झुका, मणिरथ ने विष बुझी तलवार का वार उस पर कर दिया एवं तत्काल वहाँ से निकल पड़ा।

एक चीख निकली और युगबाहु भूमिसात हो गया। मदन रेखा चीख सुन त्वरित पहुँची। पति की वार विकल देह को देख, सत्वर कर्तव्य पालन में तत्पर हुई।

उनके सिर को बड़ी सावधानी से अपनी गोद में

रखा। कानों में अपना मुँह रखते हुए उसने धर्ममय सुविचार सुनाने शुरू किए- मैं आपकी धर्मपत्नी रेखा बोल रही हूँ। किसी ने आप पर नंगी तलवार का वार किया है और लगता है कि इसमें आपका जीवन नहीं बचेगा। इस समय आप किसी के भी प्रति विद्वेष और प्रतिशोध की भावना न लावें और समझें कि यह अशुभ कर्मों के उदय से ही हुआ है। सब जीवों के प्रति आप क्षमा भाव रखें तथा अपने चित्त के भावों को निर्मल बनावें, जिससे आपका आगामी जन्म सुधर सके। धर्म की शरण लें।

युगबाहु ने यह सब सुनकर धीरे-धीरे स्वीकृति में अपना सिर हिलाया और फिर एक ही झटके में उसका सिर नीचे लुढ़क गया। वह मृत्यु को प्राप्त हो गया, किन्तु जीवन के अन्तिम समय में भावों की शुभता के प्रभाव से युगबाहु का जीव पाँचवें देवलोक में शक्रेन्द्र के समान ही देव रूप से उत्पन्न हुआ।

वह मानव आकृति की छाया और किसी की नहीं, दुष्ट भावों से प्रेरित राजा मणिरथ की ही थी। नंगी तलवार का वार करके वह प्रसन्न होकर भाग रहा था कि उसका उद्देश्य सफल हो गया है- युगबाहु मारा गया

है और अब मदनरेखा निराश्रित है। इस परिस्थिति में मदनरेखा को अपने अधिकार में ले लेना अब उसके लिये कठिन नहीं रहेगा।

उपवन के अंधेरे में मगनमन मणिरथ भागा रहा था। दुष्कृत्य करने वाला भूल जाता है कि उसका उसे वांछित फल मिल जाएगा। सुफल की आशा में उसे कुफल का ध्यान नहीं रहता। एक निरपराध मानव बल्कि अपने सद्गुणी छोटे भाई की निर्मम हत्या करने के बाद भी उसे किसी तरह का पछतावा नहीं था बल्कि अपनी घृणित वासनापूर्ति की सम्भावना से खुशी की फुलझड़ियाँ दिखाई दे रही थी। वह घोड़ा दौड़ा जा रहा था अकस्मात् घोड़े का पाँव एक भयंकर सर्प पर गिर पड़ा। पैर का आघात होना था और वह सर्प क्रोध से उछला और उसने मणिरथ के पैर में जोर दंश दे डाला। उस सर्प का विष इतना अधिक घातक था कि कुछ ही क्षणों में वह दुष्ट दानव अपने किए का फल पा गया। मणिरथ का शरीर पूरी तरह नीला होकर भूमि पर पड़ा-पड़ा निर्जीव हो गया और उसकी आत्मा चौथी नरक में पहुँच गई।

उधर मदनरेखा को दो बातों ने बुरी तरह आकुल-व्याकुल बना दिया। एक तो अपने एक मात्र

रक्षक एवं प्राणप्रिय पति की दुर्दान्त मृत्यु, तो दूसरी अपने सिर पर मंडरा गई भयंकर खतरे की आशंका कि दुष्ट मणिरथ उसे किसी भी दशा में छोड़ेगा नहीं तथा उसके शील पर जघन्य आक्रमण करेगा। वह सिहर उठी। उसे इसी में अपनी सुरक्षा दिखाई दी कि वह शीघ्रातिशीघ्र मणिरथ के राज्य से बाहर भाग जाए। उसे जीवन रक्षा की लालसा नहीं थी, शील रक्षा की चिन्ता थी।

वह वन प्रदेश की ओर भाग निकली। रात के अंधेरे में वह पत्थरों और कांटों की भी परवाह न करते हुए निर्भयता से सीमा की ओर भागती रही और वहाँ से बीहड़ वनखण्डों में। भागना उसके लिए इस कारण भी आवश्यक था कि वह अपने गर्भकाल की पूर्ति पर अपनी सन्तान को जन्म देने वाली थी। वह सवेरे तक भागती रही और तब तक भागती रही जब तक उसको यह विश्वास न हो गया कि उसने मणिरथ के राज्य की सीमा पार कर ली है।

प्रकाश फैलने पर उसने देखा कि वह एक बियाबान जंगल में पहुँच गई है। वह बुरी तरह से थक चुकी थी, अतः उसने एक विशाल वृक्ष के नीचे आश्रय ग्रहण किया। मार्ग के समीप होने पर भी वह स्थान उसे

निरापद लगा। तभी उसे प्रसव वेदना हुई और उसने एक पुत्र को जन्म दिया। नवजात को उसने एक वस्त्र में लपेटा और सुरक्षित रूप से उस वृक्ष के तने में रख दिया तथा वह शरीर शुद्धि के लिए समीप के सरोवर पर पहुँची। जाने से पहले उसने अपने नवजात पुत्र की अंगुली में अपने पति की नामांकित मुद्रा पहना दी थी।

जब मदनरेखा सरोवर पहुँची तो सामने से गर्जन तर्जन करता हुआ एक मदोन्मत हाथी आता हुआ दिखाई दिया। वह अपने आपको उसके आक्रमण से बचा सके, उससे पूर्व ही उस हाथी ने उसे अपनी सूण्ड में लपेट कर जोरों से आकाश में उछाला। उछालते ही वह संज्ञाशून्य सी हो गई तथा उसके बाद उसे ज्ञात नहीं कि उसका क्या हुआ और उस संज्ञाशून्यता की अवस्था में कितना समय व्यतीत हुआ।

जब उसकी चेतना वापिस लौटी तो उसने अपने आपको एक विद्याधर के आकाश में उड़ते हुए विमान में पाया। वह चौंककर पूछ बैठी– मैं कहाँ हूँ? आप कौन हैं और मुझे कहाँ ले जा रहे हैं?

विद्याधर बोला– सुन्दरी, भयभीत न हो। मैं एक विद्याधर हूँ तथा मेरा नाम मणिप्रभ है। मैं अपने विमान

से अपने साधु बने पिताश्री के दर्शनार्थ जा रहा था किन्तु अब वहाँ नहीं जाऊंगा।

क्यों, भला? मदनरेखा ने पूछा।

इसलिए कि तुम जैसी अभूतपूर्व सुन्दरी मिल गई है। तुम तो मृत्युलोक की साक्षात् अप्सरा हो। तुम्हें अपनी हृदयेश्वरी बनाने का मेरा मन हो गया है, इसलिए पहले मैं अपने निवास स्थान पर जाना चाहता हूँ- विद्याधर ने खुशी से पगलाई सी दशा में कहा।

मदनरेखा चौंकी कि एक नई विपत्ति उसके साामने खड़ी हो गई है। उस ने उस विपत्ति से चतुराई के साथ पार पड़ने का विचार किया। उसने मधुर शब्दों में विद्याधर से कहा- विद्याधर, तुम अपना इरादा न बदलो- शुभ संकल्प को पहले पूरा करो। पुज्य मुनिराज के दर्शनार्थ जा रहे थे सो पहले वैसा ही करो। बाद में जो उचित लगे, कर लेना।

विद्याधर का पगलाया मन नवीन आशा से भर उठा मदनरेखा के उस उत्तर को सुनकर। वह मान गया और बोला- यदि तुम यही चाहती हो तो पहले दर्शनार्थ ही चले चलते हैं। यह कहकर उसने अपने विमान की दिशा बदल दी।

लम्बी दूरी पार करके विमान नीचे उतरा और वे दोनों चलकर मुनिराज के पास पहुँचे। दोनों ने भक्तिभाव पूर्वक उनका वन्दन किया। मुनि ने दोनों की आकृतियों को ध्यान से देखा और अपने ज्ञान में वस्तुस्थिति को भांप लिया। वे अपने पुत्र विद्याधर से बोले- तुम्हारे साथ यह सुन्दरी कौन है?

यह तो मैं भी नहीं जानता कि यह सुन्दरी कौन है? किन्तु मुझे यह वनखण्ड में प्राप्त हुई है और मैं इसके साथ विवाह करने का इच्छुक हूं- विद्याधर अपनी खुशी को रोक नहीं पाया।

मुनि ने कहा- तुम्हें अपने दुष्ट भाव को प्रकट करते हुए क्या लज्जा नहीं आ रही है? किसी परस्त्री के प्रति अपने विचारों को संयमित रखना चाहिए। यह पतिव्रता और साध्वी स्त्री है- इसके प्रति अपने कुविचारों को त्याग दो और उसे पूज्या मानकर प्रणाम करो।

विद्याधर अपने मुनि पिता से यह सब सुनकर लज्जा से गड़ गया। उसने प्रतिबोध पाया और मदनरेखा के चरणों में झुक गया।

विद्याधर के इस हृदय परिवर्तन एवं मुनि के ज्ञानमय उपदेश से मदनरेखा का अन्तःकरण आस्था से

अभिभूत हो उठा। उसने मुनि की सेवा में निवेदन किया- मुनिराज आप परम ज्ञानी हैं, महान् उपकारी हैं। मेरे मन में एक जिज्ञासा है, क्या मैं उसे आपके समक्ष प्रकट करुँ?

अवश्य कहो भद्रे- मुनि ने मदनरेखा को आश्वस्त किया।

देव, मैंने राजा मणिरथ के राज्य से भागकर वनखण्ड में एक पुत्र को जन्म दिया था। वृक्ष के तने में उसे सुरक्षित रखकर स्नान करने के लिए मैं सरोवर की तरफ गई थी। वहाँ मुझे एक मदोन्मत हाथी ने आकाश में उछाल दिया था, उसके बाद मेरा क्या हुआ और कितना समय बीता- मुझे कुछ भी ज्ञात नहीं। मेरे उस पुत्र का क्या हुआ- कृपा करके बताइए।

चिन्ता न करो, तुम्हारा वह पुत्र सर्व प्रकार से सुख एवं शान्ति में है। तुम्हारे द्वारा उस वृक्ष के तने में रखकर जाने के बाद मिथिला नगरी का राजा पद्मरथ वन क्रीड़ा करते हुए उधर से निकला था। बालक के रुदन को सुनकर वह वहाँ रुका, उसने बालक की अंगुली में पहनाई गई तुम्हारी पति नामांकित अंगूठी देखी। पहचान कर वह बालक को साथ अपने राजमहल में ले गया।

तब से उसका वहीं श्रेष्ठ रीति से लालन-पालन हो रहा है। राजा का उस पर अतिशय प्रेम है तथा उसका नाम रखा गया है नमिराज।

आपसे यह सुखद् संवाद जानकर नमिराज की माता धन्य हुई, मुनिराज- मदनरेखा ने यह कहते हुए अपूर्व सन्तोष का अनुभव किया।

तभी एक विस्मयकारी घटना घटित हुई। एक सौम्य रूपधारी देव उस समय अपनी नाट्य कला का प्रदर्शन करता हुआ गगन पथ से वहाँ उतरा। वहाँ पर पहुँचते ही पहले उसने मदनरेखा को वन्दन किया एवं तदनन्तर मुनिराज को। यह देखकर विद्याधर को अति आश्चर्य हुआ, उसने मुनिराज को पूछा- इस देव का यह कैसा आचरण है जो अपने आपसे भी पहले उस सुन्दरी को वन्दन किया है?

मुनि ने उसकी शंका का निवारण करते हुए उत्तर दिया- यह सर्वथा उचित है। यह देव इस मदनरेखा के पति युगबाहु का ही जीव है, जिसे यह गति अपनी पत्नि द्वारा अन्तिम समय में दिए गए धर्मशरण के कारण प्राप्त हुई है, अतः उसने सर्वप्रथम अपने उपकारी को वन्दन किया है।

मदनरेखा का हृदय यह सुनकर अति आनन्दित हुआ। उसने मुनिराज को पुनः वन्दन किया। तभी आगतदेव तथा सुव्रता आर्या के पास दीक्षित होकर मदनरेखा स्व-पर कल्याण कार्य में प्रवृत्त हो गई।

दिन, मास और वर्ष बीतते गए- परिवर्तन की प्रक्रिया चलती रही।

राजा पद्मरथ संसार से विरक्त होकर के मुनि बन गए तथा नमिराज मिथला नगरी के राज्यासन पर स्थापित हुआ। उसके राज्य काल में चहुँमुखी उन्नति होने लगी।

एक बार नमिराज का सुभद्र नामका हाथी मदोन्मत होकर भाग निकला। उस हाथी को सुदर्शन नगर के राजा सूर्ययश के सुभटों ने पकड़कर अपने यहाँ बांध दिया। विदित होने पर नमिराज ने चन्द्रयश से अपने हाथी की मांग की, किन्तु चन्द्रयश ने उसे अस्वीकार कर दी। हठ के कारण बात तन गई और बढ़ गई तथा युद्ध की स्थिति तक जा पहुँची।

नमिराज और चन्द्रयश की सेनाएँ युद्धभूमि में आपने सामने जा डटी एवं भीषण नरसंहार की आशंका उत्पन्न हो गई।

तभी यह समाचार सती मदनरेखा तक पहुँचा। केवल उसे ही यह तथ्य ज्ञात था कि युद्धरत् दोनों राजा आपस में सगे भाई हैं। वह वहाँ पहुँची और पहले नमिराज की सैन्य स्थली पर गई। नमिराज को आश्चर्य हुआ कि युद्ध के इस समय में एक साध्वी उससे मिलने क्यों आई है? उसने वन्दन करके पूछा- आप ऐसे असमय में यहाँ क्यों पधारी हैं?

साध्वी ने कहा- बिना प्रयोजन क्या कोई कहीं आता-जाता है? मेरा भी विशिष्ट प्रयोजन है। मैं तुम्हें पूछती हूँ कि तुम किसके साथ युद्ध के लिए तत्पर हो रहे हो, जानते भी हो?

तो क्या मैं यह युद्ध अनजाने में ही कर रहा हूँ? क्या मुझे आप इतना नादान समझती हैं? यह युद्ध सुदर्शन नगर के राजा चन्द्रयश के साथ होने वाला है।

कौन है चन्द्रयश- यह जानते हो?

कह तो चुका हूँ कि सुदर्शन नगर का राजा है।

इससे भी बहुत कुछ अधिक है वह तुम्हारे लिए। वह तुम्हारा सगा भाई है और बड़ा भाई है। क्या भाई के साथ भाई का युद्ध उचित कहा जाएगा? साध्वी ने नमिराज को सारी कथा कह सुनाई।

हे सती माता, यह युद्ध कतई उचित नहीं है। मैं अभी ही इसे बन्द करने का आदेश देता हूँ।

तुम जरा ठहरो। मैं चन्द्रयश की सैन्य स्थली की ओर जा रही हूँ।

साध्वी मदनरेखा तब वहाँ गई और उसने चन्द्रयश को भी सारी वस्तुस्थिति से अवगत किया। चन्द्रयश ने भी भाई के विरुद्ध युद्ध न करने का आदेश दे दिया।

चन्द्रयश और नमिराज दोनों भाई अपनी साध्वी माता के चरणों में गिर पड़े, फिर दोनों प्रेम से गले मिले। चन्द्रयश ने रुंधे हुए कण्ठ से अपना संकल्प प्रकट किया- भाई नमिराज, इस संसार में मेरा मन विरक्त हो उठा है, मैं तो अब दीक्षा लूंगा। तुम अपने हाथी को नहीं, मेरे सम्पूर्ण राज्य को भी सम्भालो।

तब चन्द्रयश दीक्षित हो गया और काफी समय बाद दाहज्वर की पीड़ा भुगतकर नमिराज ने भी दीक्षा ली। खांडे की धार पर चलना सबने स्वीकार किया।

स्त्रोत- उत्तराध्ययन सूत्र (श्रीमद् भावगणि विरचिन विवृति)

सार- आत्मा की अमरता ही अन्तिम लक्ष्य है।

❖ ❖ ❖

कानी हथिनी पर बैठी थी गर्भिणी रानी

शिष्यों, मैं तुम्हें निमित्त शास्त्र पढ़ा रहा हूँ, तुम दोनों इसका ध्यानपूर्वक एवं विनयपूर्वक अध्ययन करना। इसके मैं विनय पर अधिक बल देना चाहता हूँ इस कारण कि शुभ बुद्धि-प्रयोग से ही इस शास्त्र में सफलता प्राप्त होती है और शुभ बुद्धि सदा विनय से मिलती है, जो वैनायिकी बुद्धि कहलाती है- गुरु ने अपने दोनों शिष्यों को नवशास्त्र पाठन से पूर्व सावधानी दिलाई।

सावधानी दिलाने के पीछे एक कारण था। उन गुरु के दो शिष्य थे- एक विनीत था तो दूसरा अविनीत। गुरु यह चाहते थे कि अविनीत शिष्य भी विनय सम्पन्न हो जाए ताकि निमित्त शास्त्र में उनके दोनों शिष्य समान रूप से पारंगत बन सकें। निमित्त शास्त्र के अनुसार निमित्तों को दृष्टि में रखकर वास्तविक अनुमान लगाने होते हैं परन्तु अनुमान वास्तविक तभी सिद्ध होते हैं जब

वे वैनयिकी बुद्धि के प्रयोग के साथ लगाए जाएँ, अन्यथा अनुमान झूठे पड़ जाते हैं। जब अनुमान झूठे पड़ जाए तो निमित्त शास्त्र का समूचा अध्ययन ही निरर्थक सिद्ध हो जाता है। इसी दृष्टि से गुरु ने अपने शिष्यों को विनय धारण करने की सावधानी दिलाई थी।

विनीत शिष्य ने नम्र स्वर में उत्तर दिया- आपकी सावधानी का मैं सदैव पूरा-पूरा ध्यान रखूंगा तथा कभी स्वभाववश मैं अविनय कर बैठूँ तो उसका कठोर प्रायश्चित स्वीकार करुंगा।

तब गुरु ने दोनों शिष्यों को एक साथ निमित्त शास्त्र पढ़ाना प्रारम्भ कर दिया।

गुरु तो पूर्ण परिश्रम के साथ दोनों शिष्यों को समान रूप से पढ़ाते थे किन्तु दोनों की ग्रहण शक्ति का भेद साफ दिखाई देता था। विनीत शिष्य गुरु के शिक्षण को यथावत् बहुमानपूर्वक एकाग्र चित्त से स्वीकार करता, जहाँ भी संशय होता गुरु से विनयपूर्वक उसका स्पष्टीकरण करा लेता तथा गृहीत विद्या का बराबर पारायण करता रहता। उसके विपरीत अविनीत शिष्य पढ़ते समय भी कुतर्क प्रस्तुत करता, गुरु के स्पष्टीकरण में सन्देह करता।

परिणामस्वरूप निरन्तर विनय एवं विवेक के

साथ शास्त्राध्ययन करते हुए विनीत शिष्य ने निमित्त और अनुमान के सम्बन्ध में शीघ्र ही तीक्ष्ण बुद्धि प्राप्त कर ली। दूसरी ओर इन गुणों से रहित होने के कारण वह अविनीत शिष्य मात्र शब्द ज्ञान का ही अभ्यास कर सका।

शास्त्राध्ययन जब पूर्ण होने को आया तो एक दिन गुरु ने दोनों शिष्यों को अपने पास बुलाकर कहा- निमित्त शास्त्र का अध्ययन अब पूर्णप्रायः है। इससे दोनों ने कहा कुछ ग्रहण किया है इसकी व्यावहारिक दृष्टि से मैं तुम्हारी परीक्षा लेना चाहता हूँ।

हमें इसके लिए क्या करना होगा? दोनों ने पूछा।

गुरु ने बताया- तुम दोनों यहाँ से पच्चीस कोस दूर तक अमुक गाँव तक जाओ और वापिस मेरे पास लौट आओ। मार्ग में प्राप्त होने वाले निमित्तों के आधार पर उस मार्ग से गुजरे व्यक्तियों तथा अन्य प्रसंगों के विषय में अपने अनुमान लगाना तथा उन की सत्यासत्यता का लेखा-जोखा लौटकर मुझे बताना। उसी के आधार पर मैं परीक्षा का निर्णय निकालूंगा।

दोनों शिष्यों ने तब गुरु के आदेशानुसार वहाँ से प्रस्थान कर दिया।

दोनों शिष्यों को आगे बढ़ते हुए मार्ग में किसी

विशाल जन्तु के पद चिन्ह दिखाई दिए। उन्हें देखकर विनीत शिष्य ने दूसरे से पूछा- बन्धु, ये किस जन्तु के पाँव हो सकते हैं?

दूसरे ने कहा- इसमें क्या बताना है? ये साफ दिख रहे हैं कि हाथी के पाँव हैं।

नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। ये हाथी के नहीं, हथिनी के पद चिह्न हैं और उस हथिनी पर बड़े घर की सधवा स्त्री बैठकर जा रही थी और वह गर्भिणी थी, बल्कि उसके एक दो दिन में ही पुत्र उत्पन्न होने वाला है क्योंकि उसका गर्भकाल पूरा हो चुका है- विनीत शिष्य ने निमित्तों को देख-समझ कर एक साथ इतनी बातें बताई।

दूसरे ने उद्यत स्वर में पूछा- ये सब जो तुम बता रहे हो, किन आधारों पर बताते हो? बता देना एक बात है और उन का सत्य सिद्ध होना दूसरी बात। तुम अपने अध्ययन की विशेषता कुछ अधिक ही दिखाते रहते हो।

विनयी मधुर स्वर में बोला- बन्धु, ऐसी बात नहीं है, ज्ञान का सार ही विश्वास होना है तथा मैंने वे ही बातें बताई हैं, जिनके सत्य होने का मुझे अपने ज्ञान के अनुसार पूर्ण विश्वास हुआ है। चलो, आगे पहुँचने पर

मेरे अनुमानों के सत्यासत्य का स्वतः ही निर्णय हो जाएगा।

अच्छा चलो, देख लेंगे तुम्हारे ज्ञान और विश्वास का सत्यासत्य- अविनीत शिष्य अकारण ही क्रुद्ध हो उठा।

दोनो अगले गाँव में पहुँचे। जाते ही देखते हैं कि गाँव के बाहर सरोवर के किनारे ही किसी रानी का पड़ाव लगा हुआ है। वहीं एक हथिनी भी बंधी हुई है, जो बायीं आँख से कानी है।

वे वहाँ खड़े ही थे कि एक दासी उनके सामने से निकलकर पास के तम्बू में घुसी और मंत्री से कहने लगी- महोदय, महाराज को पुत्र लाभ हुआ है, बधाई स्वीकार करें। दोनों ने वह बात सुनी तो अविनीत शिष्य से चुप न रहा गया, अपने साथी से बोला- तुम्हारे सभी अनुमान सत्य सिद्ध हुए हैं। कौन से निमित्तों के आधार पर तुम ये सारे अनुमान लगा पाए। मैं तो एक बात से अधिक कुछ सोच नहीं सका और वह भी सही नहीं निकली।

अभी तो चलो, कहीं रुककर कुछ विश्राम करते हैं- कहकर विनीत शिष्य उसे लेकर सरोवर के पास गया। वहाँ उन्होंने अपने हाथ मुँह धोये, फिर दोनों समीप

के एक विशाल वट वृक्ष के नीचे विश्राम करने के लिए बैठ गयी।

तभी एक और बात सामने आई। उधर से सिर पर पानी का घड़ा रखे हुए एक वृद्धा जा रही थी। उसने इन दोनों की आकृति एवं प्रकृति देखकर विचार किया कि ये अवश्य ही विद्वान् होने चाहिए। अतः वह इनके पास आई और बोली- मेरा देशान्तर में गया हुआ पुत्र कब लौटेगा, क्या तुम बता सकते हो?

उसी समय उसके सिर पर रखा हुआ पानी से भरा घड़ा नीचे गिर पड़ा और फूट गया। उसके टुकड़े-टुकड़े हो गए। अविनीत शिष्य ने सोचा कि इसके प्रश्न का तुरन्त बोल पड़ा- माँ, तेरा पुत्र इस घड़े की तरह ही मर गया है।

किन्तु विनीत शिष्य ने तत्काल उसे टोका और वृद्धा को कहा- माँजी, मेरे इस साथी की बात सत्य न मानें। मैं कहता हूँ कि आपका पुत्र अभी-अभी घर पहुँच गया है। आप तुरन्त घर पहुँचकर लम्बे समय से बिछुड़े हुए अपने पुत्र का मुँह देखिए।

वृद्धा की मनोदशा अकल्पनीय बन गई। एक कहता है कि उसका पुत्र मर गया है और दूसरा कहता

है कि घर पहुँच गया है- आखिर दोनों में सही कौन है? वह शोक व्यक्त करे या हर्ष- उसे कुछ भी समझ में नहीं आ रहा था। वह वहीं खड़ी-खड़ी थर-थर कांपने लगी। फिर विनयी शिष्य की बात उसे विश्वास हो आया और वह तीव्र गति से घर पहुँची। उसका विश्वास सत्य निकला- उसका पुत्र घर पर अपनी माता से मिलने के लिये अधीर खड़ा था।

पुत्र के प्रणाम करने पर वृद्धा ने उसे बहुत आशीर्वाद दिया तथा नैमेत्तिकों द्वारा कही हुई बातें भी बताई। फिर उसने पुत्र को कहा- जाओ, ये कुछ रुपये और वस्त्र सफल अनुमान लगाने वाले नैमेत्तिक को अर्पण कर आओ।

अविनीत शिष्य के मन में अपनी अपूर्णता से भांति-भांति के विचार उठने लगे- निश्चय ही गुरु ने ज्ञानाभ्यास कराने में मेरे साथ भेदभाव बरता है, वरन् दोनों के अनुमानों में इतना अन्तर क्यों प्रकट होता? एक निमित्त देखकर यदि वह सही अनुमान लगा लेता है तो उसी निमित्त को देखकर मेरा अनुमान सही क्यों नहीं होता? गुरु की पाठन शैली पक्षपातपूर्ण रही है- वह वापिस लौट कर इसके लिए उन्हे बुरा भला कहेगा कि

दोनों शिष्यों के ज्ञान के प्रतिफलन में इतना अन्तर क्यों रहा है?

दोनों शिष्य वहाँ से वापिस लौट कर अपने गुरु के पास पहुँचे।

गुरु के दर्शन करते ही विनीत शिष्य ने करबद्ध होकर आनन्द के आँसू बहाते हुए उनके चरणों में गिरकर परम श्रद्धा के साथ प्रणाम किया- परन्तु अविनीत शिष्य पत्थर के समान अकड़ा हुआ खड़ा ही रहा- तनिक भी नहीं झुका और धृष्टतापूर्वक गुरु मुख को घूरकर देखता रहा।

गुरु सर्वप्रथम उससे ही बोले- अरे शिष्य, क्या तुम मुझे प्रणाम भी नहीं करोगे?

वह कटुता, मत्सरता और उद्धतता के साथ कहने लगा- जिसको आपने मन से अच्छी तरह पढ़ाया है, उसने आपको प्रणाम कर ही लिया है। मैं आपको प्रणाम क्यों करूँ? आपने तो कुटिलतापूर्वक मेरे साथ भयंकर पक्षपात किया है। वास्तव में आपने मुझे कुछ भी पढ़ाया ही नहीं।

ऐसी अभद्र बात कैसे कहते हो शिष्य, मैंने तो तुम दोनों को समान भाव से एक साथ एक-सा पढ़ाया

है। उसे तुम दोनों ने भिन्न-भिन्न बुद्धि से ग्रहण किया है यह तुम्हारी अपनी बात है। अपनी विनयहीन बुद्धि के प्रयोग का दोष तुम अज्ञानवश ही मुझे दे रहे हो। विनय के सम्बन्ध में मैंने तुम्हें प्रारम्भ में ही पूरी सावधानी दिला दी थी, तुम ही विपरीत चले। गुरु ने जब यह कहा तो अविनीत शिष्य को न चाहते हुए भी लज्जा ने घेर लिया और उसकी दृष्टि भूमि में गड़ गई।

गुरु ने फिर विनीत शिष्य को पूछा- अच्छा शिष्य, तुम्हीं बताओ, मार्ग में रहे हुए निमित्तों के आधार पर तुम्हारे अनुमानों का क्या हाल रहा?

तब विनीत शिष्य विस्तार से बताने लगा- गुरुदेव, किसी बड़े जन्तु के पदचिन्ह देखकर हाथी के पाँवों के अनुमान को तो मैंने सामान्य माना और उनमें आप द्वाराप्रदत्त ज्ञान के आधार पर विशेषता खोजने लगा। मूत्र चिन्हों को देखकर मैंने जाना कि वह हाथी नहीं, हथिनी होनी चाहिए। फिर देखा कि दायीं बाजू के वृक्ष लताओं के पत्ते तो खाये हुए थे, पर बायीं बाजू के अछूते दिखाई दे रहे थे- इस पर मैंने अनुमान लगाया कि हथिनी बायीं आँख से कानी होनी चाहिए।

वत्स, तुम्हारे अनुमान निमित्त शास्त्र के गहन

अध्ययन के प्रतिफल रूप सिद्ध हुए हैं- गुरु अपने हार्दिक हर्ष को प्रकट करते हुए बोले।

वह विनीत शिष्य आगे बताने लगा- गुरुदेव, उसके बाद मैंने सोचा कि साधारण पुरुष तो हाथी की सवारी कर नहीं सकता अतः हाथी पर सवार विशिष्ट जन ही होना चाहिए। वृक्ष के कांटों में उलझे रंगीन रेशमी वस्त्र के भाग से मैंने अनुमान लगा लिया कि हथिनी पर सवार कोई रानी होनी चाहिए और वह सधवा भी होनी चाहिये। फिर भूमि पर उसके लघुशंका करने के बाद हाथ टेककर उठने का निशान देखकर मेरा अनुमान रहा कि वह गर्भिणी है और दायें पैर व हाथ के अधिक दबाव के निशान की गहराई से मैंने जाना कि उसका प्रसव आसन्न है तथा वह पुत्र को जन्म देगी।

वाह शिष्य, तुमने मेरे परिश्रम को सफल कर दिया। तुम परीक्षा में अति श्रेष्ठ सिद्ध हुए हो- गुरु ने शिष्य को अपनी बाहों में भर लिया।

विनीत शिष्य ने फिर निवेदन किया- गुरुदेव, एक अन्य घटना भी घटित हुई है।

वह क्या, शिष्य?

एक वृद्धा ने भी प्रश्न किया था कि उसका पुत्र

परदेश से कब लौटेगा तथा उसी समय उसके सिर पर रख पानी का घड़ा नीचे गिर कर टुकड़े-टुकड़े हो गया। इस पर मैंने अनुमान लगाकर बताया कि उसका पुत्र लौट आया है और घर पर पहुँच गया है। मेरा यह अनुमान भी सत्य निकला।

इस अनुमान का तुम्हारा आधार क्या था? गुरु ने पूछा।

उसने उत्तर दिया- जब घड़ा फूटकर नीचे गिर पड़ा और वे मिट्टी के टुकड़े फिर से धरती की मिट्टी के साथ मिल गए तो मैंने अनुमान लगाया कि जैसे घड़े की मिट्टी का भाग मिट्टी में और पानी का भाग पानी में मिल गया है, तदनुसार वृद्धा का भाग भी वृद्धा से मिलने को प्रस्तुत हो गया है। इसी कारण मैंने उससे कह दिया कि तुम जल्दी से घर पहुँच कर अपने बिछुड़े हुए पुत्र से मिल लो, वह वहाँ आ गया है।

प्रिय शिष्य, मुझे तुम पर अतीव गर्व है कि तुम ऐसे विचक्षण ज्ञानी हो, पर उससे भी अधिक गर्व है। तुम्हारे विनय सम्पन्न होने पर। अपने जीवन में सदा सावधान रहना कि विनय के आधार पर ही ज्ञान अधिकाधिक प्रतिफलित होता रहता है। अरे, विनय तो

धर्म का मूल है..... कहते हुए गुरु उस अविनीत शिष्य के पास गए और उसके सिर को सहलाते हुए बोले- वत्स, तुम भी निराश न होओ। विनय के महत्व को तुमने प्रत्यक्ष रूप से देख लिया है। अब अविनय का त्याग करो और विनय की शुभ भावना के साथ पठित शास्त्र का पुनः पुनः पारायण करो, तुम भी उत्कृष्ट ज्ञान को प्राप्त कर लोगे।

पश्चात्ताप की आग में जलता झुलसता हुआ वह अविनीत शिष्य अपने गुरु के चरणों में गिर पड़ा और अपने मस्तक को रगड़ने लगा। उससे उसे शान्ति का अनुभव होने लगा।

स्त्रोत- जैन सिद्धान्त बोल संग्रह भाग - 5

सार- विनय, ज्ञान और धर्म को फलवान बनाता है।

❖ ❖ ❖

चित्रकार की बेटी कैसे बनी पटरानी?

मंत्रीजी, आसपास के सभी राज्यों में चित्रशालाएँ बनी हुई हैं, केवल अपने ही राज्य में नहीं है। यह कमी तो पूरी की जानी चाहिए- क्षितिप्रतिष्ठितपुरके राजा विजित शत्रु राजा ने अपने मंत्री को सुझाव दिया।

क्यों नहीं, महाराज? कला के स्वस्थ विकास के लिये चित्रशाला का होना वांछनीय है- मंत्री ने सुझाव का समर्थन किया।

और फिर सुझाव पर तुरन्त कार्यान्वयन शुरू हो गया। चित्रशाला का निर्माण कार्य आरम्भ कर दिया गया तथा देश-विदेश से प्रख्यात चित्रकार आमंत्रित हुए।

चित्रकारों के पहुँचने पर सभी चित्रकारों को समान भाग देकर चित्रकारी करने के लिए कहा गया। भित्ति-चित्रों के अंकन का कार्य तेजी से होने लगा। इन्हीं चित्रकारों में एक वृद्ध चित्रांगद नामक चित्रकार

था, जिसके परिवार में उसके साथ मात्र उसकी पुत्री थी। वह रूप यौवन-चातुर्य व कला में सर्वोत्तमा थी। चित्रकार चित्रशाला में कार्य करता और उसकी पुत्री घर की व्यवस्था करती। सुबह का भोजन यथासमय तैयार कर वह अपने पिता के पास स्वयं भोजन लेकर चित्रशाला में जाती और उन्हें भोजन कराती। यह उसका नित्यक्रम था।

एक दिन वह भोजन लेकर जा रही थी कि मार्ग में नगर का राजा बड़ी तेजी से घोड़ा दौड़ाते हुए निकला। लागों से संकुल भीड़-भाड़ वाले मार्ग पर इस तरह घोड़ा दौड़ाते हुए देखकर वह यकायक हक्की-बक्की रह गई और किसी प्रकार भागकर उसने अपने प्राणों की रक्षा की। फिर वह चित्रशाला पहुँची। उसे भोजन लेकर आया देखकर वृद्ध चित्रकार जंगल भूमि चला गया। उसके पिता के रंग पिच्छी आदि वहाँ पड़े हुए ही थे, बैठे-बैठे उसने मोर का पंख चित्रित कर दिया। मोर पंख का वह चित्रांकन अतीव सुन्दर बना था।

तभी चित्रशाला की प्रगति को देखने की इच्छा से राजा भी वहाँ आ गया। वह इधर-उधर घूमता हुआ चित्र देखने लगा। चित्रकार की बेटी ने मोर पंख का जो

चित्र उकेरा था, उसे देखकर लग रहा था, जैसे वास्तव में कोई मोर पंख ही हो। राजा ने उसे देखा, तो उसे उठा लेना चाहा। तब केवल उसके नख टकरा कर टूट गए हाथ में कुछ नहीं आया। वह आश्चर्य से चित्र की ओर देखने लगा।

यह दृश्य देखकर चित्रकार की बेटी कनकमंजरी हँस पड़ी और बोली- मंचक तीन पैरों पर नहीं टिकता, मैं चौथा पैर ढूंढ़ रही थी और मुझे चौथा मूर्ख मिल गया।

चित्र के बाद उस कन्या के कथन ने राजा को हतप्रभ बना दिया। उसने पूछा-

मार्ग में एक पुरुष को बड़ी तेजी से घोड़ा दौड़ाते हुए देखा, जिसको इतना भी ध्यान नहीं था कि राजमार्ग वृद्ध, स्त्री व बच्चों से संकुल होता है, कोई घोड़े के पैरों से कुचला जाकर मर भी सकता है। भाग्य से मैं किसी तरह बच गई। अतः वह पुरुष प्रथम मूर्ख है और मेरी कल्पना की खाट का प्रथम पाया है और दूसरा मूर्ख?

उस खाट का दूसरा पाया और दूसरा मूर्ख यहाँ का राजा है, जिसने चित्रशाला विभिन्न चित्रकारों के

बीच काम की दृष्टि से बराबर बांट रखी है। प्रत्येक परिवार में एकाधिक चित्रकार हैं किन्तु मेरे पिता एकाकी हैं। उन्हें भी राजा ने उतना ही हिस्सा बांट रखा है- कन्या ने अपना कहना जारी रखा और तीसरा पैर मेरे पिता हैं। राजकुल में चित्रशाला को चित्रित करते हुए पहले जितना धन उन्होंने अर्जित किया, वह तो व्यय हो गया। बचे-खुचे से जो भी आहार अभी मैं लाई हूँ, तो वे शरीर-चिन्ता के निवारण हेतु चले गए हैं जबकि वे पहले निवृत्त हो सकते थे। अब यह आहार भी ठंडा हो जाएगा।

राजा ने बिना अपना परिचय दिए ही पूछा- तुमने चौथा पैर व चौथा मूर्ख मुझे कैसे कहा है?

वह हँसते हुए बोली- कोई भी आसानी से सोच सकता है कि यहाँ पर मोर पंख कहाँ से आएगा? दूसरे, समझो कि कोई मोर पंख ले भी आया तो उसे पहले आँखों से देखा जाता है रोग उसके स्फुरणादि से उसके अस्तित्व का अनुमान लगाया जाता है, हाथों से उठा लेने का प्रयास नहीं किया जाता।

तब राजा यह कहता हुआ वहाँ से चला गया- वास्तव में मैं चतुर्थ मूर्ख ही हूँ। अपने पिता को भोजन करा कर वह कन्या भी अपने स्थान पर चली गई।

फिर राजा ने अपने श्रीगुप्त नामक मंत्री को चित्रकार के पास भेजा।

चित्रकार जी, मैं आपकी पुत्री का हाथ राजा के लिए मांगता हूँ।

चित्रकार आश्चर्यचकित रह गया। वह बोला- यह तो मेरा परम सौभाग्य है, किन्तु मैं दीन-हीन राजा का सत्कार कैसे कर पाऊंगा ?

उसकी चिन्ता तुम न करो- मंत्री ने उसे आश्वस्त किया।

राजा ने चित्रकार का घर धन से भरवा दिया। चित्रकार की बेटी के साथ राजा का विवाह सानन्द सम्पन्न हो गया।

विवाह के पश्चात् चित्रकार की बेटी राजमहल में आ गई। दिन में अपनी विश्वस्त दासी को सिखा दिया कि रात में जब राजा सोने के लिए आए तब वह उसे कहानी सुनाने का हठ करे। तदनुसार जब रात को राजा उसके शयनकक्ष में आया तो दासी ने निवेदन किया- रानीजी, आप कोई कहानी सुनाइए ?

राजरानी बनी चित्रकार की बेटी ने कहा- राजाजी को नींद आ जाने पर कहानी सुनाऊंगी।

राजा ने सोचा- इस बुद्धिमती की वचन-चातुर्यता को जान ही चुका हूँ। अतः इसकी बात सुनने के लिए कपट निद्रा में सो जाता हूँ।

राजा के सोने के बाद कनकमंजरी ने कहानी शुरू की। एक कन्या थी, उसका वरण करने के लिए तीन वर एक साथ आ गए। वर ऐसे थे कि कन्या के माता-पिता किसी एक के भी समक्ष अपनी अस्वीकृति व्यक्त नहीं कर सकते थे। कारण, उनमें से एक के साथ सम्बन्ध पिता ने स्वीकार किया था, दूसरे के साथ माता ने तथा तीसरे के साथ भ्राता ने। किन्तु उसी रात एक दुर्घटना घटी कि कन्या को सांप ने डस लिया और वह मर गई। तीन वरों में से एक उसके साथ जल मरने को तत्पर हो गया। दूसरा अनशन करने लगा। तीसरे ने देवता की आराधना की तथा उससे संजीवन मंत्र प्राप्त करके कन्या को पुनर्जीवित कर दिया। तब प्रश्न उठ खड़ा हुआ कि कन्या किसे दी जाए?

दासी बोली- रानीजी, इसका उत्तर तो आप ही बताइए।

रानी ने अलसाते हुए कहा- आज तो बड़ी गहरी नींद आ रही है, उत्तर कल बताऊंगी।

कहानी के कौतूहल से राजा अगले दिन भी उसी के शयन कक्ष में आया। दासी के पूछने पर रानी ने कहा- जिसने उस कन्या को पुनर्जीवित किया वह तो उसका पिता हो गया। जो साथ में जलने को तत्पर हुआ वह उसका भ्राता कहलाया। इस कारण कन्या उसे दी जानी चाहिए जिसने उसके लिये अनशन किया- खाना-पीना त्याग दिया।

दासी ने आग्रह किया- रानीजी, एक और कहानी कहिए न? आपकी कहानियों में तो बड़ा रस है।

रानी दूसरी कहानी सुनाने लगी- एक राजा के तलघर में बैठकर कुछ स्वर्णकार मणि और रत्नों के प्रकाश में आभूषण तैयार करते थे। उन्हें वहाँ से बाहर निकलने की आज्ञा नहीं थी। उनमें से एक ने पूछा- अभी क्या समय है? दूसरे ने कहा- रात है। बताओ, उसने समय कैसे ज्ञात किया?

दासी बोली- उन्हें सूर्य या चन्द्र तो दिखाई नहीं देते थे, फिर समय का पता कैसे चला? यह तो आप ही बताइए।

रानी ने कहा- आज तो नींद आ रही है, कल बताऊंगी।

अगले दिन में भी राजा उसी के शयन कक्ष में

आ गया। फिर दासी ने कहानी के प्रश्न का उत्तर देने को कहा तो रानी ने बताया- उस सुनार को रतौंधी का रोग था, उसे दिखाई नहीं दे रहा था इस कारण उसने बता दिया कि रात है।

दासी ने फिर नई कहानी कहने का हठ किया और रानी कहानी सुनाने लगी- एक राजा के पास दो चोर पकड़कर लाए गए। राजा ने उन्हें पेटी में बन्द कराकर समुद्र में फिंकवा दिया। कुछ दिन तो पेटी समुद्र में इधर-उधर तैरती रही। एक दिन किसी पुरुष ने उसे देखा। उसे बाहर निकालकर खोला तो दोनों चोर निकले। उन्हें पूछा गया- तुम्हें फैंके हुए कितने दिन हो गए? एक ने उत्तर दिया- यह चौथा दिन है। बताओ, उसने कैसे पता चलाया?

दूसरे दिन रानी ने बताया- उस चोर को चौथिया बुखार आता था। दासी के कहने पर राजा के सामने उस रानी ने फिर नई कहानी सुनाई- किसी नगर में दो सौतें रहती थी। एक के पास कई रत्न थे किन्तु उसे दूसरी पर विश्वास नहीं था। वह सदा भयभीत बनी रहती थी कि उसके रत्नों की चोरी न हो जाए। उसने उन रत्नों को एक घड़े में बन्द करके और ऊपर से उसका मुख लीप

कर एक ऐसे स्थान पर उसे रख दिया, जहाँ आती-जाती हुई वह हर वक्त उसे देख सके। इसका दूसरी सौत को पता लग गया। उसने घड़े से रतन निकाल उसे पहले की तरह लीप कर वहीं रख दिया। पहली को ज्ञात हो गया कि उसके रत्न चुरा लिए गए हैं। बताओ, उसे यह कैसे ज्ञात हुआ?

अगले दिन रानी ने बताया कि वह घड़ा कांच का था और फिर नई कहानी शुरू कर दी- एक राजा था। उसके पास चार गुणी पुरुष थे- ज्योतिषी, रथकार, सहस्त्रयोद्धा एवं वैद्य। उस राजा की एक अति सुन्दर कन्या थी। उसे एक दिन कोई विद्याधर उठा ले गया। कोई भी यह जान नहीं सका कि उसे किस दिशा में ले गया है? राजा ने घोषणा करवाई कि जो राजकन्या को ले आएगा, वह उसी की हो जाएगी। ज्योतिषी ने बताया- उसे अमुक दिशा में ले जाया गया है। रथकार ने आकाश में उड़ने वाला एक रथ तैयार किया और चारों गुणी पुरुष उस रथ में आरूढ़ होकर राजकन्या को लाने के लिए चले। विद्याधर उनसे लड़ने के लिए आया, सहस्त्रयोद्धा ने उसे मार डाला। विद्याधर ने मरते-मरते कन्या का मस्तक काट डाला। वैद्य ने संजीवनी औषधि से उसे फिर जीवित कर दिया। तब चारों उसे फिर से जीवित कर दिया। तब चारों उसे राजा के पास ले आए

और अपने-अपने लिये कन्या की मांग करने लगे। राजा ने कन्या चारों को दे दी। राजकन्या ने कहा- मैं चारों के साथ विवाह कैसे करुँ? ऐसा करती हूँ कि अग्नि में प्रवेश करुँ और मेरे साथ ही अग्नि में चारों में से जो प्रवेश करेगा, मैं उसी को अपना पति मान लूंगी। बताओ, उसके साथ कौन अग्नि में प्रवेश करेगा?

दूसरे दिन रानी ने बताया- ज्योतिषी ने अपनी विद्या से यह तथ्य जान लिया कि राजकन्या की आयु शेष है, अतः अग्नि प्रवेश से भी वह मरेगी नहीं। अतः उसने उसके साथ अग्नि में प्रवेश करना स्वीकार कर लिया, दूसरों ने नहीं। कन्या ने चिता के नीचे गुप्त रीति से एक सुरंग खुदवाई तथा लकड़ियाँ इस तरह जमवाई कि वे दोनों बाहर निकल गए तथा राजकन्या के साथ ज्योतिषी का विवाह हो गया।

दासी के आग्रह पर रानी ने फिर नई कहानी सुनाई- व्रत रहित किसी अभिनेत्री ने नाटक में जाते समय किसी के कड़े मांगे। उसने उससे कुछ रुपये रखकर कड़े किराये पर दे दिए। अभिनय के बाद उन कड़ों को अभिनेत्री की पुत्री ने पहन लिए और कड़े लौटाए नहीं। कड़ों के स्वामी ने अपने कड़े वापिस मांगे

और मांगते-मांगते कई वर्ष बीत गए। पुत्री बड़ी हो गई और वे कड़े उसके हाथों से निकाले नहीं जा सकते थे। अभिनेत्री ने कहा- कुछ रुपये और ले लो तथा कड़ों को छोड़ दो। स्वामी नहीं माना। वह बोली- तो क्या मेरी पुत्री के हाथ काट डालें? यदि तुम नहीं मानते हो तो इसी तरह के दूसरे कड़े बनवा देती हूँ। फिर भी स्वामी नहीं माना, कहता रहा- मैं तो ये ही कड़े लूंगा। अब बताओ, वे ही कड़े कैसे दिए जाएँ? उस पुत्री के हाथ काटे जाएँ? स्वामी को क्या उत्तर दिया जाएँ?

अगले दिन रानी ने बताया- उस अभिनेत्री ने कड़ों के स्वामी से कहा कि तुम भी वे ही रुपये लाओ जो मैंने कड़े किराये पर लेते समय तुम्हें दिए थे। कड़ों का स्वामी तब निरुतर हो गया।

इस प्रकार की कहानियाँ सुनाते हुए राजरानी बनी चित्रकार की बेटी ने छः माह गुजार दिए। राजा प्रतिरात्रि उसके शयन कक्ष में ही आता। अन्य सभी रानियाँ अतीव विक्षुब्ध कि इस नई रानी ने ऐसा क्या जादू कर दिया जो वह पहले की किसी भी रानी की तरफ नजर तक नहीं डालता। सभी रानियों ने निश्चय किया कि इस चित्रकार की बेटी में कुछ ऐसे दोष ढूंढ़े

जाएँ, जिन्हें राजा को बता कर उसे उससे विमुख बना दें। तब सभी रानियाँ उसमें छिद्रान्वेषण करने में लग गई।

वह चित्रकार की बेटी प्रतिदिन अपने कक्ष में एकांकी हो जाती, फिर सारे रत्नजड़ित आभूषणों एवं बहुमूल्य वस्त्रों को अपने समक्ष रखकर आत्मचिन्तन करती हुई बोलती जाती– देख, तू एक दीनहीन चित्रकार की बेटी हैं। एक ओर वे वस्त्रादि रखे हैं जो पिता से मिले हैं। दूसरी ओर यह राजलक्ष्मी का ढेर लगा है। इस ढेर में रहकर भी अपने मौलिक वस्त्रों को भूलना मत और घमण्ड भी मत करना कि अन्य राजरानियों की ओर से ध्यान हटाकर राजा सबसे अधिक तुझे ही चाहने लगा है। गर्व से सदा दूर रहना। अपनी वास्तविकता को याद रखना। आत्म निन्दा का यह क्रम सदा चलता। एक दिन भी वह भूल नहीं करती।

अन्य रानियों को इसमें यह छिद्र नजर आया कि यह कोई न कोई षड़यंत्र रच रही है। उन्होंने राजा से यह बात बताई। राजा को भी आश्चर्य हुआ। उसने गुप्त रीति से ज्ञात किया कि यह नई रानी अकेली अपने कक्ष में प्रतिदिन क्या करती है ? उसके आश्चर्य की सीमा न रही, जब उसने उस के द्वारा की जाने वाली आत्म निन्दा

के वे प्रेरणादायक शब्द सुने। राजा बहुत प्रसन्न हुआ। उसने राजरानी बनी चित्रकार की बेटी को उसी दिन अपनी पटरानी बना दिया।

साधु भी प्रतिदिन भाव निन्दा करे और अपनी आत्मा को कहे- हे आत्मन्, तुझे यह दुर्लभ मानव जीवन मिला है- सम्यक् दर्शन, ज्ञान एवं चारित्र रूप रत्नमय भी मिला है और बहुमान भी, किन्तु तुम्हें गर्व न हो कि मैं बहुश्रुत हूँ या उत्तम चारित्रधारी हूँ।

स्त्रोत- हरिभद्रीय आवश्यक।

सार- गर्व की कालिमा उज्ज्वल जीवन को कलंकित बना देती है।

❖ ❖ ❖